ओ३म्

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी०ए० ऑनर्स, एम०ए०

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11

पंचकूला-134112 (हरियाणा)

फोन : 0172-2567845

मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक : **यू०आर०बी० प्रिंटिंग प्रैस, शैड नं. 2, रतपुर कॉलोनी, पिंजौर, मो. 9466111730, 9466112730**

दो शब्द

मेरी प्रिय आत्माओ !

आप से निवेदन है कि 'ओ३म्' नामक पुस्तक मैंने अनेकों पुस्तकों के अध्ययन एवं अनुशीलन के पश्चात् कई वर्षों के अथक परिश्रम एवं चिन्तन के उपरांत लिखी है । वस्तुतः ओ३म् परमात्मा का निज नाम है और जितने भी परमात्मा के नाम हैं वे सब गुण, कर्म और स्वभाव के कारण हैं अर्थात् गुणात्मक हैं । आज का युग भौतिकवाद का युग है । भौतिकवाद मानव जीवन में परमावश्यक तो है परन्तु अध्यात्मवाद के बिना यह अधूरा है । जीवन में सुख शांति व आनंद के लिये भौतिकवाद व अध्यात्मवाद का सुन्दर समन्वय परमावश्यक है ।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने अधिकांश आध्यात्मिक विषयों का ही निरुपण किया है । जैसे ओ३म् ईश्वर का निज नाम, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, स्वाध्याय, सत्संग, आत्मबोध, प्रेम, दान आदि सब अध्यात्म के विषय ही तो है । आज समाज में आत्मोन्नति के लिए इनका मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है । अतः मैंने इस ज्ञानामृत को पाठकों को उपलब्ध कराने का प्रयास किया है ताकि वे असत्य से सत्य की ओर और अंधकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृत पद की ओर जा सकें । मानव जीवन सुख, शांति एवं आनंद से भर जाये । इन विषयों का एक खूबसूरत गुलदस्ता मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ । लीजिए, अब आप भी इस रुहानी गुलदस्ते रूपी 'ओ३म्' के पुष्पों को देखिए और झूम-झूम कर आनंद विभोर हो जाइए ।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री लालचंद चौहान जी, सत्यपाल मोदी जी, रोशन लाल अग्रवाल जी, नरेश बंसल जी, जय किशन जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है । अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी । श्री लालचंद चौहान जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया हैं मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि इनके बिना प्रस्तुत

पुस्तक का वर्तनान रूप में संयोजन न हो पाता । जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका मैं कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ । मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से मैंने संदर्भ उद्धृत किये हैं । मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है । परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ एवं अपूर्ण है । अतः कोई भी त्रुटि रह गई हो तो पाठकों से अनुरोध है कि उस त्रुटि को लिखकर निम्नलिखित पते पर भेजें ताकि भविष्य में उसे सुधारा जा सके । मैं इसके लिये आपका धन्यवादी हूँगा ।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 18.10.2016

(धर्मपाल कपूर)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

श्री धर्मपाल कपूर जी ने अनेक पुस्तकों का प्रकाशन एवं निःशुल्क वितरण करके एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। शेष पुस्तकें प्रकाशित होने के लिए तैयार हैं। कहते हैं समाज में सत्य साहित्य के बिना मानव सत्य को नहीं जान पाता। इसलिये वेद शास्त्रों की मान्यताओं को जन-जन तक पहुँचाना एक बहुत ही प्रशंसनीय एवं लाभप्रद कार्य है। इस प्रकार की प्रवृति के बहुत लोग हैं, जो समाज सुधार के कार्य में अपना योगदान दे रहे हैं। यह सब ईश्वर की कृपा के बग़ैर कर पाना सम्भव नहीं है। इस प्रकार के पुरुषों को समाज सम्मान की दृष्टि से देखता है।

श्री धर्मपाल जी द्वारा लिखित ओ३म् नामक पुस्तक का वाचन करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। इस पुस्तक में उनके द्वारा निम्न विषयों पर बड़े विस्तार से काफी पुस्तकों का अध्ययन करने के बाद लेखन कार्य किया हैं, जिसमें जीवनोपयोगी बहुत ही लाभप्रद बातों पर प्रकाश डाला गया हैं अधिकतर पुस्तकें एक विषय पर ही आधारित होती हैं परन्तु इस पुस्तक में 'ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सम्बन्ध में वेद शास्त्रों में वर्णित का संक्षिप्त में वर्णन किया गया हैं ओ३म् ईश्वर का प्रमुख नाम है, वैसे तो ईश्वर के गुणात्मक नाम असंख्य हैं। ओ३म् अ+उ+म तीन अक्षरों का समुदाय हैं अकार, उकार, मकार के योग से ओ३म् अक्षर सिद्ध है। इसी सम्बन्ध पर पुस्तक में प्रकाश डाला गया हैं जिसको पढ़ कर लोगों को ईश्वर के सत्यस्वरूप गुण-कर्म-स्वभाव का वास्तविक ज्ञान हो सके और ईश्वर की उपासना में अपना अमूल्य समय लगाये न कि जड़ पूजा, प्रतिमा पूजा आदि में अपना समय नष्ट करके दुःखों को आमंत्रित करे।

मूर्तिपूजा के विषय में भी प्रकाश डाला है कि मूर्ति पूजा से क्या हानि होती हैं वेद में मूर्ति पूजा का निषेध है। यजुर्वेद के अध्याय 32 मंत्र 3 में **"न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः"** उस परमात्मा की कोई आकृति नहीं है,

जिसके नाम का महान् यश है । इस प्रकार इस मन्त्र में मूर्तिपूजा का खण्डन है कि जब ईश्वर की कोई आकृति नहीं तो उसकी प्रतिमा कैसे बन सकती हैं यह काल्पनिक हैं, क्या मूर्ति बनाने वाले ने किसी महापुरुष को देखा था, जिसकी प्रतिमा घड़ रहा है । मूर्ति में कई-कई हाथ दिखाये जा रहे हैं, अगर ऐसा था तो अब भी तो किसी न किसी महा पुरुष वा देवी के होने चाहिये थे । लोग इन व्यर्थ की कपोलकल्पित किस्से कहानियों को मालूम नहीं कैसे सत्य मान रहे हैं, बुद्धि से जरा भी सोचते विचारते नहीं है कि ऐसा होना क्या संभव है ।

आज अवतारवाद का विष इतना फैल गया है कि इस जहर के पान से कोई बिरला ही बच पा रहा है । लोग इस विषपान को अमृतपान समझ रहे हैं । एक गीता का श्लोक **यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।** हे अर्जुन ! जब-जब धर्म की हानि एवं पाप की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ । महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में लिखते हैं, यह वेद विरुद्ध है । श्री कृष्ण धर्मात्मा थे, यदि धर्म रक्षार्थ उनकी पुनः जन्म लेने की इच्छा हो तो इसमें कोई बुराई नहीं, परन्तु ईश्वर निराकर है, वह कभी जन्म-मरण के बन्धन में नहीं पड़ता । अधिक इस विषय में पुस्तक में वर्णन किया गया है ।

स्वाध्याय – जिस तरह शरीर के लिये भोजन आवश्यक है, उसी प्रकार आत्मा के लिये सद्ग्रंथों का स्वाध्याय भी उतना ही आवश्यक है । चरित्र निर्माण, धर्म पालन में सहायक होते हैं । सदा आर्ष ग्रंथ अर्थात् वेद शास्त्रों पर आधारित होने चाहिये । अनार्ष पुस्तकों का स्वाध्याय कभी न करें । जैसे एक कवि के शब्दों में–

किसी ने स्वाध्याय ऐसा किया करने लगा जिहाद,
कोई अश्लील स्वाध्याय कर हो जाते हैं बरबाद ।

सत्संग –सत्+संग –अर्थात् महापुरुषों, आप्त पुरुषों, विद्वानों का संग करना चाहिये, उनसे सत्य ज्ञान, सात्विक शुद्ध विचार आदि का जो उपदेश सुनने का उनके साथ से मिलता है, वही सत्संग कहलाता है । सत्पुरुषों के संग

से प्रवृति धर्म कार्यों में बनी रहती है और कुसंगति से मनुष्य का विनाश हो जाता हैं

आत्मबोध – आत्म बोध का अर्थ है, आत्मज्ञान हो जाना, अगर मनुष्य को आत्मज्ञान हो जाये तो अन्य ज्ञान तो स्वभावतः हो जाते हैं तथा अन्य कुछ जानने की आवश्यकता नहीं होती । आत्मा में बल परमात्मा से मिलता है और परमात्मा योग साधना यम-नियम की पालना से मिलती है ।

प्रेम – प्रेम भाव खत्म होता जा रहा है, एक उर्दू शायर जाफ़र जटल्ली ने लिखा ।

न यारों में रही यारी, न भय्यों में वफादारी ।
मुहब्बत उठ गई सारी, अजब यह दौर आया है । ।

दान – बहुत प्रकार के दान हैं–अन्नदान, विद्यादान, रक्तदान, नेत्रदान, क्षमादान, भूमिदान आदि । अन्न दान महादान परन्तु अन्न से कुछ ही आत्मा तृप्त होती हैं । जो यज्ञ में घी सामग्री आदि का दान है वह सर्वोत्तम है । क्योंकि इससे जितना वायुमण्डल शुद्ध होता है, उतने भाग में सभी पशु-पक्षी, कीट, पतंग एवं मनुष्यों को शुद्ध वायु से लाभ मिलता है । ईश्वर ने तो सारी प्रकृति जीवों के भोग के लिये दान में दे रखी है । मानव के पास जो कुछ भी है वह सब ईश्वर का दिया हुआ ही तो है । मानव जो भी विज्ञान से खोज कर वस्तुओं का जीवन उपयोग के लिये निर्माण कर रहा है वह सब ईश्वर का ही तो है । जैसे भवन निर्माण के लिये जो भी पदार्थ चाहियें वे सब ईश्वर प्रदत्त प्रकृति में सबके सब उपलब्ध हैं, ईश्वर तो उनका कोई मूल्य नहीं लेता और कुछ लोग ही उनके ठेकेदार बने बैठे हैं, उन ठेकेदारों को उसकी कीमत चुकानी पड़ती है । इसमें भी लोग चोरी करते हैं ।

नारी – महर्षि दयानन्द ने नारी को जगत् जननी वेद शास्त्रों के अनुसार बतलाया मनु महाराज मनुस्मृति में लिखते हैं–

यत्र नार्यस्तु, पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवा,
यत्रैतास्तु न पुज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया ।

स्त्रियों की जहाँ पूजा होती है वहाँ देवता वास करते हैं। वर्तमान से लेकर महाभारत युद्ध पर्यन्त स्त्री के सम्मान व अपमान आदि का इस पुस्तक में विवरण दिया गया है। नैपोलियन ने कहा था – आप मुझे अच्छी माताएँ दो, मैं तुम्हें अच्छा राष्ट्र दूँगा। नेताजी ने कहा था तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा।

स्वास्थ्य – बड़ी मशहूर कहावत हैं पहला सुख निरोगी काया। अगर शरीर ठीक नहीं तो कितने ही स्वादिष्ट, पौष्टिक, मुँह में पानी भर लाने वाले व्यंजन रखे हों वह सब व्यर्थ हैं, बीमार के किसी काम के नहीं है। इसी प्रकार कीमती सुन्दर वस्त्र भी सब बेकार हैं, उस अवस्था में कुछ भी अच्छा नहीं लगता बल्कि गुस्सा आता रहता है, अपनी क़िस्मत को कोसता रहता है। परमात्मा को बुरा भला बोलता रहता है। कईं तो कहते हैं कि न जाने परमात्मा मेरे से किस जन्म का बैर निकाल रहा है। यह अज्ञानता है और शरीर भी खराब। अज्ञानता के कारण ऊट पटांग खाने से या मांस, मादक पदार्थों के सेवन से, या अधिक भोजन करने से ही होता है। इसलिए मानव को शुद्ध सात्विक भोजन ही सदैव करना चाहिये। अधिक मशाले वाले व्यंजन भी नहीं खाने चाहिये। जीभ का स्वाद ही तो ऊटपटांग खाने की ओर लालायित करता है। ईश्वर ने खाने के बहुत एक से एक बढ़कर फल, सब्जी, मेवे, दूध, वनस्पति आदि व्यंजन बनाये हैं, उसके बावजूद भी कोई अपने शरीर का ध्यान न रखते हुए अखाद्य पदार्थों का सेवन करे तो कोई क्या कर सकता है। यह तो मनुष्य के ऊपर ही निर्भर करता है। हर मनुष्य की अलग-अलग सोच है।

उपरोक्त विषयों का जो वर्णन किया गया है, यह बड़े ही लाभप्रद और पठनीय विषय है। भिन्न-विद्वानों के विचारों को ज्ञान वर्धन के लिए इस लघु पुस्तक में स्थान दिया गया है। मैं तो यह कहता हूँ कि श्री धर्मपाल कपूर जी ने अथक परिश्रम से इस पुस्तक को लिखा है, जो पाठकों को उपयोगी सिद्ध होगी। जीवन में अपनाने वाली ज्ञानवर्धक बातों का इस पुस्तक में प्रावधान

किया गया हैं मुझे विश्वास है कि पाठकों को यह पुस्तक अवश्य पसन्द आयेगी और धर्मपाल कपूर जी की मेहनत रंग लायेगी क्योंकि बहुत से लोगों के जीवन में इसके पढ़ने से परिवर्तन अवश्य आएगा ।

मैं श्री धर्मपाल कपूर जी के श्रम की सराहना करता हूँ । ईश्वर इनको लम्बी आयु प्रदान करे ताकि यह महत्वपूर्ण कार्य करते रहे, ये रहें या न रहें परन्तु इनकी पुस्तकें इनका अवश्य ही हमें स्मरण कराती रहेंगी । इस पुस्तक में मेरा अपना अनुरोध है कि जो बात आपको वेद विरुद्ध लगे, कृपया उसकी ओर ध्यान न दें । सुधार के लिए लिख भेजें तो अच्छा होगा ।

लालचन्द चौहान
से.नि. राज्य विकास अधिकारी,
कोठी नं. 591, सैक्टर 12,
पंचकूला (हरियाणा)
मोबाइल : 9814881501
दूरभाष : 0172-2563079

दिनांक 19-2-2017

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	ओ३म्	1
2.	मूर्तिपूजा	15
3.	अवतारवाद	29
4.	स्वाध्याय	45
5.	सत्संग	59
6.	आत्मबोध	69
7.	प्रेम	78
8.	दान	92
9.	नारी	106
10.	स्वास्थ्य	128

1. ओ३म्

ओ३म् नाम सब से बड़ा, इससे बड़ा न कोय ।
जो ओ३म् का सुमरन करे, तो शुद्ध आत्मा होय ।
स्वाँस-स्वाँस पर ओ३म् भज, वृथा स्वाँस मत खोय ।
न जाने इस स्वाँस का, आवन होय न होय ।।

ओ३म् अ+उ+म् तीन अक्षरों का समुदाय है । अकार, उकार और मकार के योग से 'ओ३म्' यह अक्षर सिद्ध होता है । यह परमेश्वर का सबसे सर्वोत्तम एवं निज नाम है जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं । जैसा पिता पुत्र का सम्बन्ध है । वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है । इस नाम से ईश्वर के अनेक नामों का बोध होता है । जैसे अकार से (विराट्) जो विविध जगत् का प्रकाश करने वाला है । (अग्निः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है । (विश्वः) जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है । उकार से (हिरण्यगर्भः) जिसके गर्भ में प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक हैं, और जो प्रकाश करने हारे सूर्यादिलोकों का अधिष्ठान है । इससे ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं । हिरण्य के नाम और ज्योति, अमृत और कीर्ति हैं । (वायुः) जो अनन्त बल वाला सब जगत् का धारण करने हारा है (तेजस्) जो प्रकाश स्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है । मकार से (ईश्वरः) जो सब जगत् का उत्पादक, सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है । (आदित्यः) जो नाश रहित है । (प्राज्ञः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है । यह संक्षिप्त में ओंकार का वर्णन किया गया है ।

ओ३म् शब्द संस्कृत की 'अव' धातु से बना है जिसका अर्थ है रक्षा करना । अतः जो व्यक्ति ओ३म् का उच्चारण करता है उसकी रक्षा होती है । इसकी महाध्वनि से ही सृष्टि निर्माण हुआ है । संसार की सभी ध्वनियाँ ओ३म् से निकलती हैं और अंत में इसी में समा जाती हैं । चाहे वे मंदिर की घंटियाँ हों, बस चलने या कूलर आदि की ध्वनियाँ हों, सभी से ओ३म् ध्वनि निकलती

है । जिस प्रकार ब्रह्म एक है वैसे ही उसका वाचक शब्द ओ३म् ही है । ओ३म् गायत्री छन्द है । आत्मा की चिकित्सा, आत्मा की कैवल्य प्राप्ति ओंकार का अध्ययन है । श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–''प्रणवः सर्ववेदेषुः'' अर्थात् सब वेदों में मैं ओ३म् हूँ अर्थात् ओ३म् कहने मात्र से रक्षा भी हो गई, सभी स्तुतियाँ भी हो गई एवं सभी वेदों का सार भी प्राप्त कर लिया । अकार का उच्चारण करते ही होंठ खुल जाते हैं । ऐसा करने से ब्रह्मा का स्मरण होता है । उकार का उच्चारण करते ही होंठ गोलाकार हो जाते हैं । इससे विष्णु का स्मरण होता है । मकार का उच्चारण करते ही होंठ बंद हो जाते हैं । इससे महेश का स्मरण होता है । इस प्रकार अकार, उकार और मकार से क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश के प्रतीक अक्षरों का प्रतिनिधित्व करते हैं । ब्रह्मा, विष्णु, महेश ईश्वर के ही गुणात्मक नाम हैं । ईश्वर के गुणात्मक अनगणित नाम हैं ।

इसके अतिरिक्त ओ३म् में त्रैतवाद के दर्शन होते हैं । अ वर्ण आनंद का प्रतीक है और परमात्मा के तीन गुण है । सत+चित्+आनन्द= सच्चिदानंद, आनंद से पूर्व सत्+चित दो विशेषण हैं और आनंद ही परमात्मा है । उ वर्ण आत्मा का प्रतीक है क्योंकि उ ऊपर की ओर आनंद को प्राप्त करने के लिए मुड़ा हुआ है । अतः वह आनंद की खोज में परमात्मा की अनुभूति करना चाहता है । क्योंकि संसार में क्षणिक एवं नश्वर सुख तो है परन्तु आनंद नहीं है । म वर्ण प्रकृति का प्रतीक है जोकि सत् और जड़ है इसके पास न ही चित् है और न ही आनंद है । अतः मानव जीवन में सुख शांति और आनंद की प्राप्ति के लिए त्रैतवाद के वैदिक सिद्धान्त को अपनाना परमावश्यक है । पाणिनि ने ओ३म् के निम्नलिखित 19 अर्थ किये हैं–

(1) सर्वरक्षक, (2) गतिदाता, (3) कांतियुक्त, (4) प्रीतिदाता, (5) तुष्टिदाता, (6) सत्यज्ञानदाता, (7) सर्वव्यापी, (8) श्रवणशक्तिदाता, (9) स्वामी, (10) सर्वप्रदायक, (11) सुकर्मा, (12) सुकामना, (13) तेज प्रदाता, (14) वरणीय, (15) प्राप्तव्य, (16) रुद्र, (17) दाता, (18) विभाजक, (19) वर्धक । अंग्रेज़ी भाषा में प्रयुक्त GOD शब्द भी ओंकार के साथ

समानता रखता है। इसके अकार, उकार, मकार की भाँति G = Generator, O = Operator, D = Destroyer, क्रमशः उत्पादक, संचालक और संहारक अर्थों का परिचयाक हैं। इसको अधोलिखित कारणों के कारण ही परमात्मा का सर्वोत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ नाम कहा जाता है–

(1) ओ३म् परमात्मा का सबसे प्रमुख नाम है। यह परमात्मा का तीन अक्षर वाला नाम है। मात्राओं की दृष्टि से दो मात्राओं वाला और अर्थों की दृष्टि से अनन्त है।

(2) जैसे परमात्मा अपरिवर्तनशील है उसी प्रकार उसका ओ३म् नाम भी अविकारी है। सभी वचनों में, सभी विभक्तियों में और सभी लिंगों में यह एक जैसा रहता है। संसार की सारी भाषाओं में केवल ओ३म् ही ऐसी संज्ञा है जिसका लिंग कोई नहीं है।

(3) ओ३म् परमात्मा का सर्वव्यापक नाम है। वेदों, ब्राह्मणग्रंथों, उपनिषदों, दर्शनों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत, गीता, पुराणों, बाइबल, क़ुरान, श्रीगुरुग्रंथसाहिब आदि में ओ३म् शब्द मिलता है।

(4) यह परमात्मा का प्राचीनतम नाम है। वेद में इसी नाम के जपने का आदेश है।

(5) यह परमात्मा का स्वाभाविक नाम है। जब डकार निकलती है तो राम, कृष्ण, गॉड, अल्लाह न निकलकर केवल ओ३म् ही निकलता है।

(6) ओ३म् परमात्मा का सरलतम नाम है। इसका उच्चारण सुगम एवं कोमल है। किसी व्यक्ति की जीभ कट गई हो तो वह तुतले एवं हलके व्यक्ति को सब ही जानते हैं। परन्तु गूंगा तो बेचारा सारी शक्ति लगाकर भी एक शब्द नहीं बोल सकता। परन्तु एक शब्द है जिसको बच्चा, बूढ़ा, जीभ कटा, तुतला, हकला एवं गूंगा भी बड़ी आसानी से बोल सकता है और वह शब्द है

'ओ३म्' । जीभ कट जाये, दाँत मुँह में न हो तो भी ओ३म् के उच्चारण में कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि इसको बोलते समय जीभ एवं दाँत हिलने का कोई भी काम नहीं करते हैं । यहाँ तक कि जब मंदिर का पुजारी शंख बजाता है तो उसमें से भी ओ३म् की ध्वनि ही निकलती है ।

(7) ओ३म् शब्द सारी वाणी के विषयों को अपने अंतर्गत कर लेता है । वाणी की सीमा, कंठ, ओष्ठ और तालुगत नासाछिद्र हैं । कण्ठ से परे वाणी की गति नहीं है । ओष्ठ, उसके आगे भी कोई स्थान नहीं । तालुगत नासाछिद्र इससे परे भी स्थानाभाव है । इस प्रकार ओ३म् सारी वाणी की सीमा को अपने भीतर लेकर अर्थयुक्त होता है ।

(8) यह एक ओ३म् शब्द अनेक अर्थों का द्योतक है जैसा उपरोक्त वर्णित किया गया है ।

(9) वेद के प्रत्येक मंत्र के आरम्भ में इसी का उच्चारण किया जाता है क्योंकि ये मांगलिक माना जाता है ।

(10) गोपथब्राह्मण के अ, उ और म् क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के वाचक हैं ।

अतः प्रख्यात संत श्री राम ने सत्य लिखा है–

ओ३म् शब्द में वह शक्ति है कि जो शरीर को अंदरूनी तौर पर रूपांतरित कर सकता है । ये आदि नाद है, किसी भाषा या धर्म की सम्पत्ति नहीं ।

–पंजाब केसरी पृ० 7 दिनांक 27.12.2016

वस्तुतः वेद के सारे मंत्र ओ३म् का विस्तार हैं । ऋग्वेद का आरम्भ 'अ' वर्ण से होता है, और इसका मुख्य विषय ज्ञान है । सामवेद का अंतिम वर्ण 'उ' है और इसका मुख्य विषय उपासना है । इसी प्रकार यजुर्वेद का अंतिम वर्ण 'म' है जिसका मुख्य विषय कर्म है । इस प्रकार हम देखते हैं कि अ से लेकर म् तक ही वाणी चलती है और इसी प्रकार ज्ञान, उपासना, कर्म के द्वारा ही विज्ञान की उत्पत्ति होती हैं अथर्ववेद से विज्ञान का ज्ञान प्राप्त होता है । वैदिक धर्म में 'ओ३म्' शब्द को भक्ति एवं उपासना के क्षेत्र में सर्वोच्च महत्ता

प्राप्त है। अतः महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमर ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम समुल्लास के आरंभ में उचित ही लिखा है–

यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें अ, उ, म् तीन अक्षर मिलकर एक 'ओ३म्' समुदाय हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ओ३म् ईश्वर का सर्वोत्तम नाम है। इसमें ईश्वर के सम्पूर्ण स्वरूप एवं गुणों का उल्लेख है। ऐसा सम्पूर्ण एवं उत्तम परमेश्वर का अन्य कोई नाम नहीं है। ओ३म् कहते समय किसी भी अन्य विशेषण की आवश्यकता नहीं है। 'अ', 'उ' एवं 'म' इन तीनों अक्षरों से ओ३म् शब्द की सिद्धि होती है। 'अ' स्वर सर्वशक्तिमान है क्योंकि यह दूसरे अक्षरों की सहायता के बिना ही बोला जा सकता है परन्तु कोई भी स्वरहीन व्यंजन नहीं बोला जा सकता। जहाँ स्वर किसी अन्य की सहायता के बिना स्वयं प्रकट होता है वहाँ सारे के सारे व्यंजनों के प्रकट होने का मूल कारण भी है। इन सबका जीवन एवं प्रकाशक अ (परमेश्वर) सर्वशक्तिमान है। वह स्वयं प्रकाशित है तथा व्यंजनों में स्वर की भाँति वस्तुमात्र में ओतप्रोत होकर उसे जीवन सत्ता एवं प्रकाश दे रहा है। ओ३म् सर्वज्ञ है। मानव का सारा ज्ञान, सारे विचार शब्दों में पिरोए हुए हैं। हम किसी भी वस्तु का ध्यान एवं विचार शब्दों के द्वारा ही करते हैं। इस कारण हमारे मन एवं बुद्धि शब्द क्षेत्र के भीतर यही रहते हैं। जो शब्द मानुषी ज्ञान का आधार है उनकी रचना अक्षरों के संयोग से होती है। जो अक्षर मिलकर ज्ञान के आधार शब्दों को जन्म देते हैं उन सबमें आदिम अक्षर एवं अपने से भिन्न सब अक्षरों का प्रकाशक अक्षर 'अ' है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अ' आदिम अक्षर है। अन्य सब अक्षरों में 'अ' है। अक्षरों में शब्द है और शब्दों में ज्ञान है। यदि अ न हो तो अन्य कोई भी अक्षर न हो। इस प्रकार शब्द मात्र का अभाव हो जायेगा। अतः समूचे अक्षरों एवं शब्दों के प्रकाशक 'अ' ही में सर्वज्ञान है। 'अ' जहाँ वर्णमाला में वर्ण है वहाँ ओ३म् का भी भाग है। 'अ' की ध्वनि कंठ से निकलती है। शेष वर्णों की ध्वनि का स्थान भी कंठ है परन्तु जब तक इनके साथ स्वर न हो तो वर्ण बोले नहीं जा सकते। अतः विद्वान् व्यक्तियों का विचार है कि सब ज्ञानों, ध्वनियों, सब स्वरों का आदि मूल 'अ' परमेश्वर है।

ओ३म् जगत् का आदि, मध्य और अंत है। ध्वनि का आदि कंठ 'अ'

से है मध्य होठों में एवं अंत नाक में है। आदि की प्रतिनिधि 'अ' है, सर्वथा होठों में बोला जाने वाला मध्य का प्रतिनिधि 'उ' है। पाँच वर्गों में पवर्ग अन्तिम वर्ग है। इसके अन्त में 'म' है। पाँच वर्गों के ङ, ञ, ण, न तथा म ये पांच सानुनासिक वर्ग है। इन सब के अंत में सानुनासिक म् है। होठों को बंद करके नाक में ध्वनि गुंजाई जाए तो वह पूर्णतः नाक की ध्वनि होगी। इस प्रकार वह ध्वनि अंतिम होगी। उससे आगे कोई भी ध्वनि गुंजाई नहीं जा सकती। वैसे ही ध्वनि म की है। अतः पूर्णता से अंत का प्रतिनिधि म है। अ, उ, म् से ओ३म् का प्रकाशन होता है। जैसे ध्वनि क उत्पत्ति अ से है उसी प्रकार सृष्टि-उद्‌गम भी 'अ' परमेश्वर से है। जैसे ध्वनि के मध्य का प्रतिनिधि उ है इसी प्रकार सृष्टि के मध्य में इसका पालन पोषणकर्ता उ (परमेश्वर) है। जिस प्रकार ध्वनि की पूर्णता म वर्ण में होती है। उसी प्रकार सृष्टि का अंत भी म् (परमेश्वर) में है। ओ३म् सर्वान्तर्यामी और सबका जीवन हैं जो भी वर्ण उच्चारण कीजिए उसमें 'अ' की ध्वनि अवश्यमेव होगी जैसे कंठ की ध्वनि जीभ की ध्वनि में रमी हुई है एवं समस्त ध्वनियों का आधार है। ऐसे ही अ भी समस्त वर्णों में रमा हुआ है। इसी प्रकार ओ३म् भी समग्र पदार्थों का आधार एवं जीवन है। सारी सत्तायें परतन्त्र हैं और ओ३म् के आधीन हैं। वह सब का अंतरात्मा है। वस्तुतः सारे प्राणियों का परमात्मा एक ही है परन्तु अपनी श्रद्धा एवं विश्वास के अनुसार विभिन्न व्यक्तियों ने इसे विभिन्न नामों से पुकारा है। जैसे–

एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति –ऋग्वेद 1.164.46

उस एक ही परमात्मा को विद्वान् व्यक्ति अनेक नामों से पुकारते हैं। जैसे–

वह एक ही परमेश्वर सृष्टि का उत्पादन, पालन और संहार करता है। उसी के ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम हैं। –विष्णुपुराण

इसी कारण स्वामी शिवानंद जी महाराज ने अपनी पुस्तक "Bliss Divine" में ओ३म् की महत्ता पर इस प्रकार प्रकाश डाला है–

Om is verily, Brahman, Om is Satchitananda, Om is infinity, Om is eternity, Om is immortality. P-409

वस्तुतः ओ३म ब्रह्म, सच्चिदानंद, अपार, अजर एवं अमर है ।

ओ३म शब्द को अनेक प्रकार से लिखा जाता है । जैसे–

1. ओ+म्=ओं–इसको ह्रस्व उच्चारण के नाम से पुकारा जाता है । यह पाप नाशक है ।

2. अ+३+म्=ओम् –इसको दीर्घ उच्चारण कहा जाता है । इससे अक्षय सम्पत्ति प्राप्त होती है ।

3. ओ+३+म् –इसको प्लुत उच्चारण कहा जाता है इससे ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

4. ॐ यह अर्धमात्रा सहित उच्चारण है । इससे मोक्ष प्राप्ति होती है ।

5. अकार+उकार+हलंतःमकार–ओंकार अकार ध्वनि मूलाधार से उठकर नाभि से मणिपुर चक्र में से अनाहत चक्र तक व्याप्त होकर ब्रह्म ग्रंथि का भेदन करती है । उकार ध्वनि नाभि में ऊपर हृदय से विशुद्ध चक्र तक व्याप्त होकर ग्रंथि का भेदन करती है । मकार ध्वनि कंठ देश से आज्ञाचक्र तक व्याप्त होकर रुद्रग्रंथि का भेदन करती हैं । अतः किसी कवि ने ओम् महिमा के विषय में लिखा है–

ओ३म् नाम ऋषियों को प्यारा, सबको सबसे श्रेष्ठ सहारा ।
ओ३म् नाम का सौदा करले, कभी न होगी हानि । ।

इस प्रकार ऊपरलिखित विशद् विवेचन के उपरांत हम देखते हैं कि अ+उ+म् इन तीन वर्णों से ओम् शब्द का निर्माण हुआ है । ये तीनों वर्ण स्वर हैं । जो कि बिना व्यंजनों की सहायता से बोले जाते हैं । अब तीनों वणों का विवेचन ''सत्यार्थप्रकाश'' में महर्षि दयानन्द द्वारा इस प्रकार किया गया है ।

1. विराट (वि+राट्=प्रकाशक) अग्नि, विश्व आदि ।

2. हिरण्यगर्भ (हिरण्य+गर्भ) = वायु, तेज आदि

3. मकार (ज्योति+आश्रय) ईश्वर, आदित्य, प्रज्ञा आदि

विभिन्न आर्ष ग्रंथों के मंत्रों एवं श्लोकों का उच्चारण भी ओ३म् से किया जाता है । विभिन्न धार्मिक ग्रंथों में ओ३म् के दर्शन स्थान-स्थान पर होते हैं । सर्वप्रथम चार वेदों के विभिन्न 20416 मंत्रों में केवल यजुर्वेद में

निम्नलिखित तीन स्थानों पर प्रभु के सर्वश्रेष्ठ ओ३म् नाम का प्रयोग हुआ है–

(1) **ओ३म् प्रतिष्ठ** (ओ३म् में समाहित हो) –यजुर्वेद 2.13

(2) **ओ३म् क्रतोस्मर** (हे कर्मशील मानव ! तू ओम् का उच्चारण कर) –यजुर्वेद 40.15

(3) **ओ३म् खं ब्रह्म** (यजुर्वेद 40.17

(ओ३म् आकाशवत् व्यापक होने से और सबसे बड़ा होने से ईश्वर का नाम है ।)

अतः ओ३म् का जाप स्मरणशक्ति को तीव्र करता है इसलिये वेदाध्ययन में कुछ मंत्रों के आदि एवं अंत में ओ३म् का प्रयोग किया जाता है । मनुस्मृति में आया है –ब्रह्मचारी को मंत्रों के आदि एवं अंत में ओ३म् शब्द का उच्चारण करना चाहिये, क्योंकि आदि में ओ३म् शब्द का उच्चारण न करने से अध्ययन धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है तथा अंत में ओ३म् शब्द न कहने से वह स्थिर नहीं रहता है । स्वामी शिवानंद ने अपनी पुस्तक "Bliss Divine" में अपने मुखारबिन्द से मुखरित किया है–

The essence of the four Vedas is om only. He who chats or repeats OM really repeats the sacred books of the whole world. P-411

केवल ओ३म् ही चार वेदों का सार है जो भी कोई ओ३म् का गीत गाता है । वस्तुतः वह समग्र संसार के पवित्र ग्रंथों का पाठ करता है ।

इसके उपरांत विभिन्न उपनिषदों का अनुशीलन करने के उपरांत प्रतीत होता है कि इनमें भी ओम् महिमा का गुणगान किया गया है । जैसे मुण्डकोपनिषद् में लिखा है–

प्राणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।। 2.4

ओ३म् धनुष, आत्मावाण एवं परमब्रह्म परमेश्वर उसका लक्ष्य है । इस लक्ष्य को प्रमाद रहित एवं सावधान साधक ही वेध सकता है । प्रमाद रहित एवं सावधान बनने के निमित्त मानव को यम नियमों का पालन करने हुए अष्टांगयोग द्वारा मानव शरीर को पवित्र करते रहना चाहिये ।

यम के मजबूर करने पर नचिकेता ने कहा–

मेरे लिये यदि वर देना चाहते हो तो बताओ कि वह ईश्वर क्या है? इसका उत्तर देते हुये यम ने कहा–यह न पूछ। कोई और वस्तु मांग लो। मैं आपको अतुल्य धन दे सकता हूँ। समूची पृथ्वी का राज्य भी दे सकता हूँ। भोगविलास एवं अत्यंत सुन्दर स्त्रियाँ भी दे सकता हूँ। दीघार्यु दे सकता हूँ। यदि आज का युवक होता तो यम से कहता कि कृपया मुझे यही दे दो क्योंकि आधुनिक युवक भौतिकवाद की पुजारी है।

वस्तुतः यही वह अक्षर है जो ब्रह्म है निश्चित रूप से यही अक्षर परम है। इसको जानकर जानने वाला वो सब कुछ पाता है जिसकी वह इच्छा करता है। इसका आश्रय सर्वश्रेष्ठ है। इसका आश्रय लेने वाला ब्रह्मलोक में आनंद एवं महिमा को प्राप्त करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषदों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वह ब्रह्मविद्या की निर्मल गंगा ऋषियों के मस्तकरूप शिखरों से उतर कर संसार को पावन करती हुई अंत में ओ३म् सागर में समा जाती है। इसलिये स्वामी शिवानन्द ने ओ३म् के विषय में लिखा है–

Om is your spiritual food. Om is your Spiritual Tonic and Vitamin. It is full of divine potencies. It is your constant companion. It is your saviour. It is your joy and life.

P-416

ओ३म् हमारा आध्यात्मिक भोजन, टॉनिक एवं विटामिन है। यह हमारा परममित्र, रक्षक, आनंद और जीवन भी है।

ब्राह्मण ग्रंथों से पुराणों पर्यन्त साहित्य में सब संत महात्मा ओ३म् के उपासक थे। मनु ने तो ओ३म् को वेदसार के नाम से पुकारते हुये इसे 'एकाक्षरं परं ब्रह्म' अर्थात् एकाक्षर ब्रह्म कहा है। इस प्रकार हम देखते है। कि ब्रह्मा से जैमिनी तक समस्त महर्षि इसके उपासक थे। यहाँ तक कि रामायण में एक प्रसंग आता है कि जब राम अपने अनुज लक्ष्मण के साथ सिद्धाश्रम को जाते समय प्रातःकाल गंगा पर पहुँचे। उस समय श्रीराम जी ने स्नान करने के उपरांत 'जेपेतु परम जपम्'' ओ३म् परम जप का जाप किया। इसी प्रकार गीता में भी ओ३म् का वर्णन किया गया है–

ओ३म् तत्सदिति निर्देशो ब्राह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।। गीता 17.23

जो है ओ३म् तत् सत् मुकद्दस (पवित्र) कलाम (महावाक्य),
सह-गोना (तीन अक्षरों वाला) है यह ब्रह्म का पाक नाम ।
इन्हीं से ब्राह्मण हुए आशकार (प्रकट),
इन्हीं से हुये यज्ञ और वेद चार । ।

ईश्वर का नादरूप वह ओ३म् शाश्वत है । परब्रह्म का यह नाम तीन प्रकार का कहा गया है । उससे ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञ भी प्रकट हुए । सृष्टि के आदिकाल में पवित्र महावाक्य ओ३म् तीन अक्षरों वाला प्रकट हुआ ।

ओ३म् तत् सत् – ये तीन अक्षर ब्रह्म तत्व के वाचक हैं । इसी नाम से सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण, वेद एवं यज्ञ प्रकट हुये थे ।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम । । 17.24

इबादत (यज्ञ) सखावत (दान) रियाज़त (तप) के काम,
मुआफ़िक (अनुकूल) जो हैं शास्त्र के तमाम ।
वो सब ब्रह्मदाँ मरदम-ए-पारस (विवेकी पुरुष) ।
हमेशा करे ॐ से इब्तदा (शुरुआत) । ।

इसलिये योगी बन परमात्मा की प्राप्ति के लिये ओ३म् नाम का उच्चारण करके ही तप, यज्ञ, दान, आदि सब क्रियाओं का शुभारम्भ करते हैं ।

आदि शंकराचार्य इसको प्रतीक स्वीकार करके इसकी उपासना करना बताते हैं । कबीर, नानक आदि ओ३म् के ही परम भक्त थे । महर्षि दयानन्द सरस्वती भी ओ३म् का नित्य ध्यान करते थे । इन्होंने संन्यासियों को ओ३म् जाप करने की प्रेरणा प्रदान की । वस्तुतः ओ३म् का स्वर ब्रह्माण्ड में निरंतर स्वतः गुंजायमान हो रहा है । संत उसे अनहद नाद के नाम से पुकारते हैं । अनहद अर्थात् जिस नाद की कोई सीमा नहीं । आप कभी ऐसे स्थान पर चले जायें जहाँ पर किसी भी प्रकार का शोर न हो । फिर आप स्वयं आँखें मूंद कर ध्यान दें तो आपको एक ऐसी मंद-मंद गूंज सुनाई देगी जैसे म्-म्-म् शब्द निरंतर गूंज रहा सुनाई देगा । यही वह परमात्मा के ओम् नाम की निरंतर गूंज हो रही है । यही अनहद नाद है ।

यहाँ तक कि जून 1971 की 'ओ३म्' नामक पत्रिका के 'उपासना' अंक में 'ओ३म्' के विषय में एक महत्त्वपूर्ण घटना इस प्रकार छपी थी। एक भारतीय प्रो० हर दयाल एम०ए० अमेरिका के एक कॉलेज में पूर्वीय भाषाओं को पढ़ाने के लिए प्रोफेसर नियुक्त हुये थे। उनकी मित्रता उसी कॉलेज के एक अन्य प्रो० हरूप जी से हो गई जोकि अपने वरिष्ठ प्रोफेसर मार्च के छुट्टी पर जाने के कारण अस्थायी रूप से एक वर्ष के लिये वहाँ पर नियुक्त हुये थे। प्रो० मार्च अमेरिका जंगलों में जाकर ओ३म् पर एक तजुर्बा कर रहे थे। एक बार प्रो० हरूप जी प्रो० मार्च से मिलने के लिए उसी जंगल में गये जहाँ पर वे अपना ओ३म् पर तजुर्बा कर रहे थे। वे यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि प्रो० मार्च ने सरकंडे की कुछ झाड़ियाँ बना रखी थी जिनमें उन्होंने अनेक जानवर व पक्षियों को इकट्ठा कर रखा था। प्रो० मार्च सैंकड़ों जानवरों और पक्षियों की विभिन्न आवाज़ों को सुनकर रिकॉर्ड कर रहे थे। दोनों प्रोफेसरों ने प्रो० मार्च से पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं और इसका क्या लाभ होगा। प्रो० मार्च ने उन दोनों प्रोफेसरों को बताया कि वे उनसे प्रतिज्ञा करते हैं कि वे एक पार्टी में उन्हें बुलाकर इन तजुर्बों के विषय में बतायेंगे।

कुछ समय बाद प्रो० मार्च ने एक सभा बुलाई जिस सभा में अनेक मेहमान आये। यहाँ तक कि उस सभा में अमेरिकी राष्ट्रपति जी भी पधारे। दोनों प्रोफेसरों को भी वहाँ पर बुलाया गया। इस प्रकार प्रो० मार्च ने एक बार में अपने तजुर्बों के रिकॉर्डों को दिखाना आरम्भ कर दिया। वहाँ पर जितने भी व्यक्ति आये थे। वे यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि इन सब रिकॉर्डों में से ओ३म्, ओ३म् ओ३म् की संयुक्त ध्वनियाँ निकलने लगीं। इस पर खुश होकर अमेरीकी राष्ट्रपति ने प्रो० मार्च को इनाम भी दिया। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि मानव ही नहीं अपितु सारे संसार के पशु व पक्षी भी परमात्मा को याद करने के लिये ओ३म् का उच्चारण करते हैं। यहाँ तक कि नासा के वैज्ञानिकों ने एक अन्वेषण में पाया कि सूर्य की किरणों में भी ओ३म् की ध्वनि होती है। वस्तुतः ओ३म् ही परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ, वैज्ञानिक और सरल नाम है। क़ुरान में भी लिखा है–

अल्लाह के नाम से जो निहायत, दयावान् मेहरबान है। अलिफ़, लाम, नीम।

हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि इन तीनों अक्षरों का ज्ञान यदि मुसलमान भाइयों को नहीं है तो इसका अर्थ यह है कि वे क़ुरान को समझने

की योग्यता नहीं रखते हैं। अरबी व्याकरण के अनुसार 'लाम' अक्षर, 'वा उ' में बदल जाता है। अतः अलिफ+वाउ+मीम=ओ३म् जोकि परमेश्वर का सर्वप्रथम नाम है। क़ुरान का रचयिता इस ग्रंथ का आरम्भ करता हुआ अल्लाह को निहायत दयावान और मेहरबान के नाम से पुकारता है। अब प्रश्न उठता है कि ऐसे अल्लाह का नाम क्या है। जिसे लेकर क़ुरान लिखना शुरू किया गया। क़ुरान उत्तर देता है–''अलिफ, लाम, मीम'' अर्थात् ओ३म्।

इस प्रकार हम देखते हैं कि क़ुरान के रचयिता ने चाहे वह अल्लाह हो या मोहम्मद हो सर्वप्रथम ओम् नाम से प्रभु स्मरण किया था। क़ुरान में इसके अतिरिक्त कई स्थानों पर इसका उल्लेख है परन्तु वह है सिपारे या सूरत के मुसलमानों को अल्लाह, ख़ुदा आदि के स्थान पर परमात्मा की उपासना ओ३म् नाम से करने की बात क्योंकि यही क़ुरान को स्वीकार है। यदि क़ुरान में सीधे शब्दों में ओ३म् लिख दिया जाता तो लोग हिन्दू धर्म की नकल क़ुरान को बताने लगते। अतः कुछ घुमाकर ओ३म् का उल्लेख उसमें किया गया है जो विद्वानों के समझने की बात है।

ध्वनि के रूप में ओ३म् रहस्यात्मक पवित्र ध्वनि है, जिस पर ध्यान करके व जिसकी साधना करके साधक तीनों प्रकारों, अर्थात् शारीरिक, मानसिक, आत्मिक शान्ति प्राप्त कर लेता है। तभी ओ३म् के साथ तो तीन बार शांति बोलने की प्रथा है। जैसे ओ३म् शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!! यही नहीं ओ३म् अनाहत नाद है अर्थात् बिना बजाये बजने वाली ध्वनि। इसी को निःशब्द अदृश्य, चरम चेतना का नाद कहते हैं, जहाँ भाषा तर्क, विचार, दर्शन सब अपने अर्थ खो देते हैं।

ओ३म् एक विश्वव्यापक मंत्र है। इस्लाम के अनुयायी अरबी भाषा के शब्द 'आमीन' का प्रयोग करते हैं जो ओ३म् का समानांतर है, जिसका भाव है– ''ख़ुदा ऐसा करें'' यहाँ तक कि ॐ चंद्र वही आधा चन्द्र है जिसको मुस्लिम सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। यहूदी व ईसाई भी अपनी प्रार्थनाओं के अंत में 'आमीन' अथवा 'एमन' शब्द का प्रयोग करते हैं। स्वामी विद्यानंद सरस्वती लिखते हैं–

मुसलमानों का 'आमीन', यहूदियों तथा ईसाइयों का एमन ये सब ओ३म् के विकृत रूप हैं। (सत्यार्थभास्कर भाग 1, पृ० 106)

कैथोलिक कर्म कांड में लेटिन के बहुत से शब्द अंग्रेज़ी में आ गये हैं। परमात्मा के सर्वज्ञ शक्तिमान, सर्वव्यापक रूपों के लिये प्रयुक्त Ominipotent, Ominpresent और Omniscient शब्दों का प्रयोग होता है जिनमें "Omini" ओ३म् का अपभ्रंश रूप है।

इसी प्रकार श्रीगुरुग्रंथसाहिब का आरम्भ भी–''एक ओंकार सतनामु'' से होता है। संस्कार पद्धति के अनुसार जब शिशु का जन्म हो तभी उसका पिता सुवर्ण श्लाका को मधु एवं घृत लगाकर नवजात शिशु की जीभ पर बड़े कोमल हाथ से ओम् लिखे और उसी समय उसके कान में ''वेदोऽसि'' तू वेद है ये शब्द कहे। मधु एवं घृत ये दोनों पदार्थ रोगों को दूर करने वाले हैं। पुष्टि को देने वाले हैं। इनसे परमेश्वर का ओ३म् लिखने का यह तात्पर्य हे कि घृत से अधिक पुष्टि देने वाला रोग नाशक मधु से भी अधिक मधुर और दोषविनाशक प्रभु नाम ओ३म् है।

पुत्र-पुत्री की जिह्वा पर सर्वप्रथम ओ३म् लिखने का यह भी उद्देश्य समझना चाहिये कि बच्चों को सबसे पहले ओ३म् शब्द ही सिखाना उचित है। ऐसा करना एक तो संतान पर शुभ संस्कार डालना है दूसरे ओ३म् अत्यधिक कोमल होने से बच्चे को उच्चारण करना सुगम है। ''ओओ'' तो प्रत्येक बच्चा पुकारता है। केवल होंठ बंद करना ही शेष रहता है और यह बच्चे के लिये बहुत सरल काम है।

ओ३म् शब्द के उच्चारण से ही मन को एक दिव्य शान्ति की प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि यदि सच्चे मन से 7 बार ओ३म् का उच्चारण किया जाए तो शरीर के रोग का नाश हो जाता है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म से जुड़े जितने भी मंत्र एवं आरतियाँ हैं उनके आरम्भ में ओ३म् लगाया जाता है। अतः स्वामी राम तीर्थ ओ३म् के विषय में लिखते हैं–

अपनी समस्त शक्तियों को अपने सम्पूर्ण बल को इस तथ्य में विलीन कर दीजिए कि एक ही सत्य है–ॐ! ॐ!! ॐ!!!।

यहाँ तक कि 1879 ई० में बरेली में ओ३म् विषय पर मुन्शी राम जोकि एक व्यसनी व्यक्ति थे महर्षि दयानंद के द्वारा दिये गये प्रवचन को सुनने मात्र से ही महात्मा श्रद्धानंद बन गये थे।

अंततः ओ३म् नाम आत्मा के लिये रामबाण है। इससे सब प्रकार के मानसिक एवं आध्यात्मिक दूषित भाव दूर हो जाते हैं। मानव एवं उसकी आत्मा पापों से दूर रहकर निष्काम भाव से परमार्थ में लग जाती है। ओ३म्

नाम से भक्त अपना कुशलक्षेम प्रभु पर छोड़ देता है। अतः ओ३म् की उपासना ध्यान, मनन एवं चिंतन करना चाहिये। ओ३म् के विषय में एक कविता प्रस्तुत की जाती है–

प्यारा ओ३म् प्यारा ओ३म् प्यारा ओ३म्।
तुझ बिन इक पल भी न गुजारू।।
जानो जिगर मैं तुझ पै बारु
सबसे तू है न्यारा ओ३म्।।
जिसने भी तुझ को है पुकारा
तूने बढ़कर दिया सहारा।।
पल में सुनता प्यारा ओ३म्।
प्यारा ओ३म प्यारा ओ३म् प्यारा ओ३म्।।
कण कण में ही व्यापक तू है।
तुझ बिना और न कोई है।।
सबके दिल का सहारा ओ३म्।
प्यारा ओ३म् प्यारा ओ३म् प्यारा ओ३म्।।
श्रीराम ने तुझको ध्याया।
योगिराज ने तुझको गाया।।
मनु की आँख का तारा ओ३म्।।
प्यारा ओ३म प्यारा ओ३म् प्यारा ओ३म्।।
वेदों का पैग़ाम यही है।
ईश्वर का निज नाम यही है।।
दयानन्द का दुलारा ओ३म्।
आओ हम, ओ३म् ही गाये।।
अपना जीवन सफल बनाये।
'आजिज़ ने भी धारा ओ३म्।
प्यारा ओ३म प्यारा ओ३म् प्यारा ओ३म्।। –बलदेव सिंह ''आजिज़''

2. मूर्तिपूजा

बुतपरस्तों का है दस्तूर निराला देखो ।
खुद तराशा है मगर नाम ख़ुदा रखा है ।।
हर गुल (फूल) में हर शजर (वृक्ष) में,
हर शै (वस्तु) में हर बशर (व्यक्ति) में ।
गर तू न देखे उसको, तो है कसूर तेरा ।।

वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, गीता, भागवतपुराण, क़ुरान, श्रीगुरुग्रंथसाहिब आदि ग्रंथों में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है । इस विषय का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जाता है–

1. मूर्तिपूजा और वेद :– महर्षि दयानंद सरस्वती जी के अनुसार चारों वेदों में 20416 मंत्र हैं और एक भी मंत्र में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है । जैसे–

न तस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः –यजुर्वेद 32.3

उस परमात्मा की कोई आकृति नहीं है जिसके नाम का महान् यश है । इस प्रकार इस मंत्र में अवतारवाद की कल्पना का कैसा स्पष्ट खण्डन है ।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।। –यजुर्वेद 40.8

वह परमात्मा सर्वव्यापक, शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान, शरीररहित, छिद्ररहित, नस व नाड़ियों के बंधन से परे शुद्ध, पवित्र, निष्पाप, क्रांतदर्शी सर्वज्ञ सब जीवों के मनोभावों को जानने वाला दुष्ट एवं पापियों का तिरस्कार करने वाला और सबके ऊपर विराजमान है । वह स्वयं अनादिस्वरूप है और अपनी सनातन प्रजा को रचता है ।

2. मूर्तिपूजा और उपनिषद् :– सारे उपनिषद् के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इन में मूर्तिपूजा का कहीं भी वर्णन नहीं है जैसे–

एष सर्वेषु भूतेषु गुढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते तु अग्रय्या बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।। –कठोपनिषद् 3.12

परमात्मा इन सब भूतों में अंतर्जगत् एवं बाह्यजगत् में छिपा हुआ प्रकट नहीं होता। सूक्ष्मदर्शी लोग अग्र बुद्धि से (आगे आगे चलने वाली सूक्ष्म बुद्धि) से उसका दर्शन करते हैं।

वेदाहमेतमाजरं पुराणं सर्वात्मनं सर्वगतं विभुत्वात्।

जन्मनिरोध प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्।।

—श्वेताश्वतरोपनिषद् 3.21

परमात्मा का साक्षात्कार कर ब्रह्मवादी कहता है कि मैं उस अविनाशी, सनातन, सर्वद्रष्टा और सामर्थ्यवान होने से सर्वव्यापक परमात्मा को जानता हूँ। ब्रह्मवादी कहते हैं कि वह नित्य है और कभी जन्म नहीं लेता। यहाँ अवतारवाद का स्पष्ट खण्डन किया गया है।

3. मूर्तिपूजा और दर्शन :— षटदर्शनों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इन में 4832 सूत्र हैं। परन्तु एक भी सूत्र में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है। जैसे-

क्लेश कर्म विपाकाशर्ये शैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।

-योगदर्शन 1.24

अविद्या आदि पाँच क्लेश, कर्मफल और वासनाओं के संसर्ग से रहित पुरुष विशेष परमात्मा है। इस लक्षण से सिद्ध होता है कि प्रभु देहधारी नहीं हो सकता क्योंकि सब बातें देहधारी में होती है।

न च कर्वः करणम् —वेद दर्शन 2.2.43

अतः सिद्ध हुआ कि प्रभु के शरीर एवं इन्द्रियादि साधन नहीं है।

4. मूर्तिपूजा और मनुस्मृति :— मनु महाराज कृत मनुस्मृति में 2685 श्लोक हैं। इसके आरम्भ में ही सृष्टि उत्पत्ति विषय पर विचार करते हुए परमात्मा के स्वरूप का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। यहाँ पर भी परमात्मा को अचिन्त्य और अनादि कहा गया है और कहीं भी मूर्तिपूजा का वर्णन नहीं है। एक श्लोक देखिए—

योसाऽवतौन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्त सनातनः सर्वभूत मयोऽचिंन्त्य स एव स्वयमुद्वभौ —7.1

जोकि इन्द्रियों से नहीं जाना जाता और परमसूक्ष्म नित्य एवं सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त और आकार रहित एवं अचिन्त्य है, वही स्वयं प्रकट हुआ है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेकों प्रक्षिप्त भागों के होते हुए भी सारी मनुस्मृति में मूर्तिपूजा या अवतारवाद के समर्थन में एक भी श्लोक ढूंढे नहीं मिलता है । इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मूर्तिपूजा का जन्म काल मनुस्मृति के प्रक्षिप्त काल से भी कहीं पीछे हुआ है । परन्तु पंचयज्ञविधि को आवश्यक नित्य नैमितिक कर्म बताया गया है । एक श्लोक देखिए–

ऋषियज्ञं, देवयज्ञं, भूतयज्ञं च सर्वदा ।

नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ।। –मनुस्मृति 4.21

संध्या, स्वाध्याय, अग्निहोत्र, बलिवैश्व, अतिथि और पितृयज्ञ को यथाशक्ति कभी न छोड़ें और सदा करते रहें ।

5. मूर्तिपूजा और रामायण :– बाल्मीकि रामायण का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि उस समय आर्य लोग प्रातः सायं संध्या व हवन करते थे जैसे विश्वामित्र ने राम व लक्ष्मण से कहा–

स्नाताश्च कृतजप्याश्च हुतहव्या नरोत्तम । –बालकांड 23.18

हम लोग स्नान करेंगे और जप करके हवन करेंगे ।

इसी प्रकार ऋषि, मुनियों द्वारा भी अग्निहोत्र का उल्लेख है । जैसे–

वासं चक्रुर्मुनिगणाः श्रीणाकूले समाहिताः

तेऽस्तं गते हिनकरे स्नाह वा हुतहुताशनाः –बालकांड 31.20

सूर्य के अस्त होने से, स्नान करके उन मुनियों ने हवन किया ।

6. मूर्तिपूजा और महाभारत :– महर्षि वेदव्यास जी कृत महाभारत संसार का सबसे बड़ा महाकाव्य है । इसमें 1,07,390 श्लोक हैं । इसका अध्ययन करने से विदित होता है कि इसमें भी मूर्तिपूजा का विधान नहीं है । निम्नलिखित श्लोक देखिए–

अशब्दस्पर्शरूपं तदरसागन्धमव्ययम् ।

अशरीरं शरीरेषु निरीक्षेतनिरिन्द्रयम् ।। -शान्तिपर्व 239.17

वह परमेश्वर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध से रहित अव्यय है और शरीर

में व्याप्त है । उस अशरीरी एवं निरिन्द्रिय को देखें ।

हृदयं सर्वभूतानां पर्वणांकुष्ठमात्रकः ।

अथ ग्रसत्यनंतो हि महात्मा विश्वमीश्वरः ।। —शांतिपर्व 312.15

सब प्राणियों के हृदय में अंगुष्ठ पर्वमात्र परमात्मा दृष्ट होता है । वह परमात्मा अनन्त है जो विश्व को अपने अंतर ग्रहण करता है ।

इससे प्रतीत होता है कि महाभारत काल तक धार्मिक मान्यतायें वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल ही थीं और यज्ञ, योग, सन्ध्योपासना आदि को ही इस काल तक भगवद्भक्ति का मुख्य साधन समझा जाता था ।

7. मूर्तिपूजा और गीता :– महर्षि वेदव्यास जी कृत गीता महाभारत के भीष्म पर्व 25वें अध्याय से लेकर 42वें अध्याय तक 18 अध्यायों के ग्रंथ का नाम है । इसमें 700 श्लोक हैं । इसके अध्ययन से भी प्रतीत होता है कि इसमें एक भी श्लोक में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है । निम्नलिखित दो श्लोकों को देखिए–

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।। 17.24

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाँक्षिभिः ।। 17.25

इबादत (यज्ञ), सख़ावत (दान) रियाजत (तप) के काम,
मुआफ़िक (अनुकूल) जो हैं शास्त्र के तमाम ।
वो सब ब्रह्मदां मरदम-ए-पारसा (विवेकी पुरूष) ।
हमेशा करें ओ३म् से इब्तदा (शुरूआत) ।।
जहाँ में है मतलूब (इष्ट) जिसको निजात (मोक्ष) ।
समर (फल) से नहीं कुछ उसे इल्तफ़ात् (ध्यान) ।
इबादत रियाज़त सुख़ावत करे ।
मगर हर्फ़-ए (अक्षर) तत् मुँह से कहे ।।

इसलिये ओंकार का उच्चारण करके यज्ञ, दान, तप, ये क्रियाएं वैदिक

लोगों में निरंतर विधिपूर्वक होती रहती हैं । हे अर्जुन ! मोक्ष की इच्छा और दान की नाना प्रकार की क्रियाएं तत् सत् शब्द उच्चारण करके करते हैं ।

8. मूर्तिपूजा और पुराण : 18 पुराणों में 3,99,100 श्लोक हैं । इन में भी मूर्तिपूजा का वर्णन नहीं मिलता है । इसके विपरीत इस काल में विद्वानों ने मूर्तिपूजा का विरोध किया । निम्नलिखित उदारहण दृष्टव्य है-

बुद्धि यस्यात्म कुणये त्रिधातुके ।
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इच्यधीः ।।
यत्तीर्थ बुद्धिः सलिलेन कर्हिचित् ।
ज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ।। –भागवतपुराण 10.84.13

जो लोग इस शरीर को ही आत्मा समझते हैं । स्त्री, पुत्रादि की जो ममत्व बुद्धि रखते हैं । मिट्टी पत्थर काष्ठ आदि से बनी हुई मूर्तियों को देव मानते हैं और जल में वीर्य बुद्धि रखते हैं ऐसे सभी लोग विद्वानों के मध्य नीच गधे के समान हैं ।

अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः ।
सर्व वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् ।।

–शिवपुराण, पु. वायु सं.अ. 4.87

बिना आँखों के भी वह देखता है और बिना कानों के भी सुनता है । वह सबको जानता है । उसको पूर्ण रूप से जानने वाला कोई नहीं । उसको ईश्वर कहते हैं ।

यहाँ तक कि पुराणों में परमात्मा को निराकार, सर्वव्यापक और अजन्मा भी बताया गया है । जैसे–

एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
जन्म वृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः ।। –विष्णुपुराण 2.14.29

जन्म से रहित आत्मा, एक व्यापक सम, शुद्ध निर्गुण एवं प्रकृति से परे है । वृद्धि आदि से रहित सर्वव्यापी एवं अव्यय है ।

9. मूर्तिपूजा और क़ुरान :– क़ुरान में 30 पारे, 114 सूरे और 6666 आयतें हैं । परन्तु एक भी आयत में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है और इस में

ख़ुदा के 99 नामों का वर्णन तो है । परन्तु मुसलमान एक ख़ुदा की इबादत में विश्वास रखते हैं न कि मूर्तिपूजा में जैसे–

ख़ुदा के सिवाय कोई इबादत के लायक नहीं है । वही अर्शे अज़ीज का मालिक है । –उन्नीसवाँ पारा

ख़ुदा के सिवा किसी की इबादत न करें । –चौबीसवाँ पारा

10. मूर्तिपूजा और श्रीगुरुग्रंथसाहिब :– श्रीगुरुग्रंथसाहिब के अनुशीलन से प्रतीत होता है इसमें 36 संत-महात्माओं की वाणी के 5867 शब्द एवं श्लोक हैं । परन्तु इनमें से कहीं भी मूर्तिपूजा का विधान नहीं है । जरा देखिए–

ੴ सतिनामु – श्रीगुरुग्रंथसाहिब का आरंभ इस शब्द से हुआ है, जिसको सिक्ख धर्म का मूलमंत्र है । सारा ग्रंथ इसकी व्याख्या है । यह मूलमंत्र इस ग्रंथ में 33 बार अंकित है । इसका भाव है कि परमात्मा एक है और वह एकमेव अद्वितीय है । जैसे गुरु नानक देव जी लिखते हैं–

एको सिमरो नानका जल थल रिहा समाई ।
दूजो काहो सिमरिए जमे ते मर जाई । । –श्रीगुरुग्रंथसाहिब

11. मूतिपूजा और संत :– भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि विभिन्न संतों व ऋषियों ने भी मूर्तिपजा का खंडन किया जैसे कबीर, दादूदयाल, नामदेव, तुकाराम, रविदास, समर्थगुरु रामदास, संत ज्ञानेश्वर आदि । निम्नलिखित उदाहरण देखिए–

पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजुं पहार ।
ताते यह चक्की भली जो पीस खाय संसार । । –कबीर

महर्षि दयानंद सरस्वती ने तो यहाँ तक कह डाला–

जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना, अन्यत्र न करना यह एक ऐसी बात है कि जैसे चक्रवर्ती राजा को एक राज्य की सत्ता से छुड़ाकर एक छोटी सी झोंपड़ी का स्वामी मानना । देखें ! यह एक कितना बड़ा अपमान है, वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो ।

इसलिये हरबंस लाल 'मुज़रिम' ने लिखा है–

नाद वेदों का जमाने में बजाया तूने ।

जामे तौहिद (एकेश्वर पूजा) जमाने को पिलाया तूने । ।

नग्माए ओ३म् जमाने को सुनाकर ।

बुतपरस्तों (मूर्तिपूजकों) के दिमाग़ों को हिलाया तूने । ।

अतः महापुरुषों के चित्र की नहीं चरित्र की पूजा उनके प्रति सबसे बड़ा सम्मान-भाव है ।

अब प्रश्न पैदा होता है कि मूर्तिपूजा का कहीं भी विधान नहीं है तो यह कब और क्यों चली । वस्तुतः महावीर और महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को सदाचार की शिक्षा दी और परमात्मा के विषय में वे मौन रहे । अतः इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके शिष्यों ने परमात्मा के स्थान पर इन्हीं की मूर्तियां बनाकर पूजना आरंभ कर दिया । इसी कारण महावीर व बुद्ध की मूर्तियां सबसे पुरानी हैं । इसी प्रकार पौराणिकों ने भी जैनियों व बौद्धों का अनुकरण करके जीविकोपार्जन के लिए मूर्तिपूजा चलाई ।

परन्तु अब तो मूर्तिपूजा बहुत बढ़ गई है । यहाँ तक कि जैनियों ने ऋषभदेव जो जैनियों के सर्वप्रथम तीर्थंकर थे, मांगी तुगी नासिक, महाराष्ट्र में 108 फुट की मूर्ति की स्थापना कर दी है । यह विश्व की सबसे ऊँची मूर्ति है और इसका नाम गिनीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स में दर्ज हो चुका है ।

12. मूर्तिपूजा और शंका समाधान :– निम्नलिखित प्रश्नोत्तरी के द्वारा मूर्तिपूजा के विषय में कुछ शंका समाधान प्रस्तुत किये जाते हैं । जरा इन को देखिए–

प्रश्न 1 क्या मूर्तिपूजा प्रभुप्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है ?

उत्तर - मूर्तिपूजा प्रभुप्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है । यह उपमा भ्रमपूर्ण है । सीढ़ी पर चढ़कर व्यक्ति उत्तरोत्तर ऊँचा उठता है । परन्तु मूर्तिपूजा पतन की ओर ले जाती है और एक मूर्तिपूजक आजीवन मूर्तिपूजक ही बना रहता है । यह बात दूसरी है कि उसका विश्वास मूर्तिपूजा से किसी प्रकार स्वयं हट जाये या हटा दिया जाये । मानवता की निष्काम सेवा, आप्त पुरुषों का आदर-सत्कार, सत्संग तथा अष्टांगयोग के यम-नियम की पालना तो

प्रभुप्राप्ति की प्रथम सीढ़ी हो सकती हैं । परन्तु मूर्तिपूजा तो एक गहरी खाई है जो मानव समाज को रसातल की ओर ले जाती है। यह एक ऐसा अंधविश्वास है जो मानव हृदय को पाषाण तथा बुद्धि शून्य बना देता है। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि जड़ पूजा से बुद्धि भी जड़ हो जाती है ।

प्रश्न 2 - यदि ईश्वर अवतार धारण न करे तो रावण और कंस आदि का नाश कैसे हो सकता है?

उत्तर - इस प्रश्न का उत्तर महर्षि दयानंद जी ने कितना सुन्दर लिखा है–

जो ईश्वर अवतार धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है उसके आगे कंस और रावण आदि एक चींटीं के समान भी नहीं है। वह सर्वव्यापक होने से कंस, रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है। जब चाहे मर्माच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनंत गुण कर्मयुक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव को मारने के लिए जन्म-मरण युक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है?

-सत्यार्थप्रकाश (समुल्लास 7)

प्रश्न 3 : मूर्ति चाहे हम परमात्मा की न मानें किन्तु यदि हम उसमें परमात्मा की भावना करते तो फल अवश्य मिलेगा। क्योंकि व्यक्ति की जैसी भावना होती है उसी के अनुसार उसे फल मिलता हैं कहावत भी है–''मानो तो देव नहीं तो पत्थर है।''

उत्तर : जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही मानना और जानना भाव है इससे भिन्न अभाव है । भावना मात्र से किसी वस्तु की वास्तविकता नहीं बदली जा सकती । चूने के पानी में जानकर या न जानकार दूध की भावना करली जाये तो क्या उससे मक्खन निकल सकता है? बालू में शक्कर की भावना करने से क्या मुँह मीठा हो जायेगा? इसी प्रकार जल में अग्नि की भावना करने से हमारा शीत कभी दूर नहीं हो सकता । संसार का प्रत्येक व्यक्ति सुख की भावना करता है, दुःख की कभी कोई भी व्यक्ति भावना नहीं करता । किन्तु फिर भी लोग दुःखी दिखाई देते हैं । प्रायः देखा जाता है कि बहुत से रोगी भूल

से अपने रोग की औषधि के स्थान पर विषपान कर जाते हैं फलतः उनकी मृत्यु हो जाती है। औषधि में उनकी भावना स्वस्थ होने की थी पुनः मृत्यु क्यों हुई? प्रत्येक वस्तु का गुण-दोष विपरीत भावना करने पर भी उससे दूर नहीं होता। पत्थर में देवता की भावना करने पर भी वह पत्थर रहेगा न उसमें चेतना आ सकती है और न वह हमारा हित या अहित कर सकता है।

प्रश्न 4 : मूर्ति पूजा करनी चाहिए या नहीं?

उत्तर : मूर्ति पूजा जड़ पूजा है अपितु हम चेतन परमात्मा को पाना चाहते हैं। वस्तुतः यह तो वही बात हुई कि चाहिये तो लड्डू और लेने चले गये जूतों की दुकान पर। इससे अधिक आश्चर्य और क्या होगा? परमात्मा हमारे अंदर है और पूजा बाहर। गोद में बालक और नगर में ढिंढोरा। जैसे कबीर दास जी लिखते हैं–

कस्तुरी कुण्डल बसे मृग ढूंढे वन माही।
ऐसे घट-घट राम है दुनियाँ जाने नाही।।

मूर्तिपूजा का आधार अवतारवाद है। जब अवतारवाद ही वेद विरुद्ध है तो मूर्तिपूजा क्यों नहीं? राम व कृष्ण भी स्वयं को मानव मानते थे। पुनः किसकी मूर्ति और कैसी मूर्तिपूजा? अवतारवाद असिद्ध होते ही मूर्तिपूजा स्वयं असिद्ध हो गई है। जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

जन्म मरण से रहित है निश्चय वह करतार।
नियमबद्ध वह प्रभु है लेता नहीं अवतार।।

अतः सब धर्मों को मूर्तिपूजा सर्वथा नहीं करनी चाहिए।

प्रश्न 5 : परमात्मा सर्वव्यापक है तो वह मूर्ति में भी है। जब मूर्ति में भी परमात्मा है तो मूर्तिपूजा का विरोध क्यों?

उत्तर : उपासना का मुख्य लक्ष्य है आनंद व मोक्ष की प्राप्ति। ये गुण परमात्मा के हैं। जीवात्मा को ये गुण तभी प्राप्त होंगे जब उसका परमात्मा से मिलन होगा। योग उपासना का अर्थ है जीवात्मा व परमात्मा का मिलन। परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण सब के अंदर है और मूर्ति में भी है। परन्तु जीवात्मा सर्वव्यापक नहीं है। वह केवल शरीर के अंदर है। यह शरीर से

निकल कर बाहर मूर्ति में मिलने के लिए नहीं जा सकता है। बाह्यमूर्ति में प्रभुदर्शन नहीं हो सकता इसलिये बाह्यमूर्ति में ध्यान का निषेध है। जबकि मानव शरीर में आत्मा व परमात्मा दोनों सदा विद्यमान हैं। अतः कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत महर्षि दयानंद जी ने सत्यार्थप्रकाश के 11वें सम्मुलास में माता-पिता, अतिथि, आचार्य, पति के लिए पत्नी और पत्नी के लिए पति को ही उपास्यदेव के नाम से पुकारा। उनके कहने का भाव यह है कि मूर्ति पूजा के स्थान पर इनकी तन-मन-धन से पूजा करनी चाहिए क्योंकि यही प्रभुपूजा और यही सच्ची पूजा है।

प्रिय पाठको! मैं आपकी सेवा में मूर्तिपूजा के विषय में स्वामी विवेकानंद जी के जीवन की एक घटना का वर्णन करना चाहता हूँ। स्वामी विवेकानंद जी घूमते-फिरते अलवर राज्य में पहुँचे तो अलवर के महाराज व दीवान ने उनका भव्य स्वागत किया। महाराजा अलवर एक धार्मिक राजा थे। अतः वे उनके धर्मप्रचार से अत्यधिक प्रभावित हुये। इसके पश्चात् एक दिन अलवर के राजा मूर्तिपूजा की निन्दा करने लगे। उस समय स्वामी विवेकानंद जी की दृष्टि दीवार पर लटके हुए महाराजा के एक चित्र पर पड़ी। उन्होंने उस चित्र को उतरवाया और हाथ में लेकर दीवान जी से पूछा–

क्यों, यह महाराज बहादुर का चित्र है न?

दीवान जी ने उत्तर दिया – हाँ।

स्वामी विवेकानंद जी ने उसे भूमि पर रखकर दीवान जी से कहा–

अब आप इस पर जरा थूक दीजिए।

ऐसा सुनकर सभी लोग एक बार स्वामी विवेकानंद जी की और फिर महाराज के मुँह की ओर ताकने लगे। दीवान जी अंत में बोल उठे–

आप क्या कह रहे हैं स्वामी जी क्या हम महाराज के चित्र पर थूक सकते हैं?

इस पर स्वामी विवेकानंद जी ने उत्तर दिया–

महाराज का चित्र होने से इसमें क्या आ गया? इसमें महाराज स्वयं तो उपस्थित नहीं है यह तो सिर्फ एक काग़ज़ का टुकड़ा है। यह महाराज की

तरह हिलजुल तो नहीं सकता या बातचीत भी तो नहीं कर सकता, फिर भी आप लोग चुप क्यों खड़े हैं?

इसके पश्चात् स्वामी विवेकानंद जी ने हँसते हुए कहा–

हाँ, मैं जानता हूँ आप लोग इस पर थूक नहीं सकेंगे। महाराज के प्रति असम्मान प्रकट होगा। क्यों है न ठीक?

यह सुनकर सभी उपस्थित व्यक्तियों ने स्वामी विवेकानंद जी के कथन का समर्थन किया। इस पर वे महाराज से हाथ जोड़कर बोले–

स्वामी जी! आपकी कृपा से आज मुझे मूर्तिपूजा के संबंध में एक नवीन अभिज्ञता हुई। वास्तव में, यदि आप की दृष्टि से विचार किया जाये तो मैंने भी आज तक एक लकड़ी या पत्थर का उपासक नहीं देखा। इतने दिनों तक मैंने मूर्तिपूजा का वास्तविक रहस्य नहीं समझा था और न समझने की चेष्टा ही की थी। पर आज आपने मेरे ज्ञान की आँखें खोल दी है।

इसके विषय में आचार्य चाणक्य लिखते हैं–

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।

भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्।। –चाणक्यनीति

परमात्मा न काष्ठ में है, न मिट्टी में, न मूर्ति में। वह केवल भावना में रहता है। भावना ही मुख्य है। अतः भावना ही भगवान् है।

हम देखते हैं कि मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध तो है परन्तु यह एक पूजापद्धति बन चुकी है। वस्तुतः प्रभुपूजन का ढंग प्रत्येक व्यक्ति का अलग-अलग है और दूसरे उसकी रुचि के अनुसार उसका यह व्यक्तिगत विषय भी है। हम किसी भी व्यक्ति को वेदानुसार निराकार प्रभु की पूजा करने के लिये बाध्य नहीं कर सकते हैं। महर्षि दयानन्द जी ने तो अपने गुरु स्वामी विरजानंद जी के समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि वे आर्षग्रंथों का ही प्रचार करेंगे। परन्तु यह सब के लिए व्यावहारिक नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी रुचि व परिस्थितियों के अनुसार प्रभुपूजन की पद्धति अपना रखी है। अतः विभिन्न सम्प्रदायों की पूजापद्धति भी विभिन्न है जैसे दादू दयाल के शिष्य रज्ज़ब

लिखते हैं–

अपने अपने पंथ की सभी मनाते टेक ।
रज्ज़ब निशाना एक है तीर अंदाज अनेक । ।

संसार में विभिन्न सम्प्रदायों की पूजा पद्धतियाँ तो विभिन्न हैं । एक पूजा पद्धति कभी हो ही नहीं सकती । तभी तो भारत में केवल 5000 आर्य समाजें हैं और लगभग 10,00,000 मन्दिर हैं । अच्छा होगा कि मूर्ति पूजक इन मूर्तियों को परमात्मा न मानकर महापुरुषों की मूर्तियाँ मानकर उनके गुणों को जीवन में धारण करके अपने जीवन को श्रेष्ठ बनायें और एक ही परमात्मा को सर्वव्यापक मानें तथा आपस में प्रेम से जीयें । जैसे–

ग्रंथ, पंथ सब जगत् के बात बतावन तीन ।
राम हृदय, मन में दया, तन सेवा में लीन । ।

अंततः इतना ही कहना काफी होगा कि मूर्ति में ध्यान केन्द्रित नहीं होता बल्कि ख़्याल मुंतशिर हो जाता है । कभी आँख में, कभी कान में, कभी कहीं और कभी कहीं । तो मूर्ति में व्यक्ति का ध्यान केन्द्रित हो ही नहीं सकता । जैसे महर्षि कपिलमुनि लिखते हैं–

ध्यानं निर्विषय मन –साख्यदर्शन 6.25

मन के निर्विषय होने को ध्यान कहते हैं अर्थात् ध्यान तभी होता है जब मन में कोई विषय न हो और चिन्ताएं दूर होते ही नींद आ जाती है । यह पता नहीं चलता कि नींद कब आ गई । यदि मन में विषय आ जाएं तो मानव विषय के विचार में फंस जाएगा । जैसे जो कोई व्यक्ति किसी सुन्दर महिला को देखने के बाद कभी उसकी आँख के बारे में सोचता है कभी नाक के बारे में, कभी कपोलों के बारे में तो कभी बालों के बारे में आदि । इसी प्रकार विचारों की एक शृंखला चल पड़ती है तो मन में मूर्ति का ध्यान करने से उसमें केन्द्रित नहीं होता अपितु अस्थिर होता है । इसलिये मूर्ति को सामने रखने से भगवान् का ध्यान कभी नहीं हो सकता । सब पत्थरों की मूर्तिपूजा सर्वथा व्यर्थ है । महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं–

मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट हो जाता है। इसलिये ज्ञानियों की सेवा संग से ज्ञान बढ़ता है पाषाणादि से नहीं। —मूर्तिपूजा से हानियाँ

हम देखते हैं कि परमेश्वर सर्वव्यापक होने से मूर्ति में है परन्तु उसकी भक्ति करने वाला जीवात्मा मूर्ति में प्रविष्ट नहीं हो सकता। अतः मूर्तिपूजा से तो उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी क्योंकि भक्त की वाणी मूर्ति में प्रवेश नहीं करेगी। वह तो आकाश में विचरण करेगी। तब आपकी याचना कौन सुनेगा? यदि मूर्ति के दर्शन मात्र से प्रभुस्मरण हो जाये तो उसके बनाये पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि कृत महामूर्तियों की जिन पर्वत आदि से मानवकृत मूर्तियाँ बनती हैं उनको देखने से प्रभुस्मरण क्यों नहीं होता। जब मूर्ति सामने नहीं होगी तो व्यक्ति एकांत में चोरी-जारी, व्यभिचार, रिश्वत आदि कुकर्म करने में रहेगा। क्योंकि वह समझेगा कि इस समय उसे कोई नहीं देख रहा है। मिलन वहीं सम्भव होगा जहाँ पर दोनों (आत्मा और परमात्मा) होंगे। ये दोनों तो केवल शरीर में ही निवास करते हैं। मूर्तिपूजा के विषय में पं. रामचन्द्र देहलवी लिखते हैं—

यदि कोई मूर्तियाँ पूजने अर्थात् सेवा करने योग्य हैं तो वे माता, पिता आचार्य, अतिथि और पति के लिए पत्नी और पत्नी के लिये पति हैं। इनकी तन, मन और धन से यथायोग्य सेवा करना ही इनकी पूजा हैं। ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना द्वारा उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव को करते जाना और बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों को करना और निष्काम भाव से संसार की सेवा करना ही परमेश्वर का नाम स्मरण है।

पं. राम देहलवी लेखावली पृ. 143

इसी विषय में नारायण प्रसाद ''बेताब'' जी की महादाश्चर्य नामक कविता प्रस्तुत की जाती है—

अजब हैरान हूँ भगवन! तुम्हें कैसे रिझाऊँ मैं।
न कोई वस्तु ऐसी है, जिसे सेवा में लाऊँ मैं।।

करूँ किस तरह आवाहन, कि तुम सर्वत्र व्याप्त हो ।
निरादर है बुलाने को, अगर घंटी बजाऊँ मैं ।।
तुम्हीं हो मूर्ति में भी, तुम्हीं व्यापक हो फूलों में ।
भला भगवान् को भगवान् पर कैसे चढ़ाऊँ मैं ।
लगाना भोग कुछ तुमको, ये एक अपमान करना है ।
खिलाता है जो सब जग को उसे कैसे खिलाऊँ मैं ।
तुम्हारी ज्योति से रोशन हैं सूरज चाँद और तारे ।
महा अन्धेर है तुमको, अगर दीपक जलाऊँ मैं ।
भुजाएँ हैं न गर्दन हैं, न सीना है, न पेशानी ।
तू है निर्लेप नारायण कहाँ चन्दन लगाऊँ मैं ।
बड़े नादान है जो जन गढ़ते हैं आप की सूरत ।
बनाया विश्व को तुमने तुझे कैसे बनाऊँ मैं ।।

3. अवतारवाद

जन्म मरण से रहित है निश्चय वह करतार ।
नियमबद्ध वह प्रभु है लेता नहीं अवतार । ।

दयानंद खोल गए पाखंडियों की पोल,
व्यर्थ में पीट रहे अवतारवाद का ढोल ।
ईश्वर कभी जन्म मरण के बन्धन में नहीं आता,
इसको कोई क्यों नहीं समझ पाता । —श्री लालचंद चौहान

अवतार शब्द का अर्थ है उतरना । परन्तु उतर तो वह सकता है जोकि एक देशी हो या किसी विशेष स्थान पर बैठा हो । इसलिए अवतार शब्द का प्रयोग सर्वव्यापक परमात्मा पर लागू नहीं होता क्योंकि जो सर्वव्यापक है वह न तो किसी स्थान से उतर सकता है और न ही किसी विशेष स्थान पर बैठ सकता है । अतः महर्षि वेद व्यास जी लिखते हैं—

जन्माद्यस्य यतः —वेदांत 1.1.2

परमात्मा वह है जो सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है ।

ईश्वर के विषय में विभिन्न विचार हैं । वस्तुतः ईश्वर को मानने वाले बहुत हैं परन्तु जानने वाले बहुत कम हैं । जो ईश्वर के मानने वाले हैं उनमें पारस्परिक बहुत झगड़ा है । ईश्वर के नाम, काम, निवास का झगड़ा है । इस कारण लोग नास्तिक हो रहे है । ईश्वर को लोगों ने अंधों का हाथी मान रखा है । वस्तुतः हमने ईश्वर को ओ३म् के आधार पर GOD के नाम से पुकारा है । अतः G = Generator, O = Operator, D = Destroyer, बनता है । इस प्रकार ईश्वर ब्रह्मा, विष्णु और महेश है । आप सोचिये कि इतने प्रमाण होते हुये भी लोगों ने ईश्वर को कैद कर रखा है । कोई जिज्ञासु पुरी में भगवान् जगन्नाथ जी के मंदिर में भगवान् के दर्शन करने के लिये गया तो पुजारी जी बोले—भगवान् दातुन कर रहे हैं फिर वही जिज्ञासु एक दूसरे मंदिर में भगवान

के दर्शन के लिये गया तो पता चला भगवान् भोजन कर रहे हैं। इसी प्रकार एक जिज्ञासु ऋषिकेश के एक मन्दिर में भगवान् के दर्शन के लिये गया और पुजारी बोला—भगवान् विश्राम कर रहे हैं। कहने का भाव यह है कि कहीं भगवान् को सर्दी और कहीं गर्मी लग रही है। क्या यह प्रभु की व्यापक सत्ता का उपहास नहीं है। वस्तुतः इन्सान ने भगवान् को अपने जैसा बनाया फिर कम्पीटीशन करवाया। विभिन्न सम्प्रदायों के मतानुसार परमात्मा के विभिन्न निवास स्थान हैं। जैसे वैष्णव वैकुण्ठ में, शैव कैलाश में, जैन मोक्ष शिला शिवपुर में, गोसाईं गोलोक में वाममार्गी श्रीपुर में मानते हैं।

बाइबल में लिखा है —परमात्मा चौथे आकाश में रहते हैं।

क़ुरान में लिखा है—खुदा सातवें आकाश में रहते हैं।

परन्तु महर्षि दयानंद ने इस कम्पीटीशन में भाग नहीं लिया, अपितु ललकारा कि जो सत्ता सृष्टिकर्ता है वह सर्वव्यापक ही हो सकता है। जो ऊपर आए या नीचे जाए वह कभी भी भगवान् नहीं हो सकता, निराकार पदार्थ कभी भी साकार नहीं हो सकता। यह कहते ही सभी भगवान् धड़ाम से नीचे गिर पड़े। महर्षि दयानंद ने इतना बड़ा चक्रव्यूह तोड़कर कमाल कर दिया और संसार को एक परमात्मा की पूजा वह भी ओम् नाम से वेद के आधार पर बतलाई व समझाई। वस्तुतः परमात्मा गूंगे का गुड़ है जैसे गूंगा गुड़ खाकर उसका स्वाद नहीं बता सकता। इसी प्रकार परमात्मा को कोई नहीं बता सकता क्योंकि वह व्यक्ति नहीं अपितु वह अनुभूति का विषय है फिर भी विभिन्न विद्वानों के मतानुसार परमात्मा के विषय में मुख्य तीन मत हैं जिनका वर्णन अधोलिखित पंक्ति में संक्षिप्त रूप से किया जाता है।

1. आस्तिकवाद (Theism)–

इसका आधार है परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करना। इसके विचारकों का मत है कि परमात्मा एक है, जो एक रूप वाली प्रकृति को बहुत प्रकार से प्रस्तुत करता है और धीर पुरुष उसको आत्मा में स्थित देखते हैं, उनको चिरकाल तक रहने वाला सुख प्राप्त होता है, अन्यों को नहीं होता है।

जैसे आदिशंकराचार्य ने अनुभूति के उपरांत कहा–

उसके अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं है ।

इसी प्रकार महर्षि दयानंद ने परमात्मा की अनुभूति के उपरान्त कहा–

उस जैसी कोई सत्ता नहीं है ।

2. नास्तिकवाद– (Atheism)

बौद्ध एवं चारवाक मतों में उस समय से जब कि पश्चिमी सभ्यता का विकास भी नहीं हुआ था नास्तिकता के विचार पाये जाते हैं । जैसे– चारवाक मत वाले कहते हैं–

जो जो स्वाभाविक गुण हैं उससे द्रव्य संयुक्त होकर सब पदार्थ बन जाते हैं । जगत् का कर्ता कोई नहीं ।

इसी प्रकार जर्मन लेखन निटशे (Nietsche) ने तो यहाँ तक लिखा है–

इस 20वीं शताब्दी में ईश्वर की मृत्यु हो गई ।

3. अज्ञेयवाद (Agnosticism) –

19वीं शताब्दी में योरुपीय निवासियों में परमात्मा के विषय में अज्ञेयवाद का आविर्भाव हुआ । इंग्लैंड के हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spancer) और जर्मनी के डी०बी० रेयांड (D.B. Reyond) इस मत के आचार्य समझे जाते हैं । हर्बट स्पेंसर ने तो यहाँ तक कह दिया–

हम परमात्मा को नहीं जानते हैं और उसे जानेंगे भी नहीं ।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि मूर्तिमान की मूर्ति हो सकती है । इसलिये किसी भी मानव की मूर्ति हो सकती है परन्तु ईश्वर की मूर्ति न थी न है और न होगी । महापुरुष किसी भी देश विदेश की सम्पत्ति नहीं होते उनका जीवन सार्वजनिक होता है फिर भी वे किन्हीं विशेष सांस्कृतिक आदर्शों और विशेष जातीय गौरव के प्रतीक होते हैं । परन्तु परमपिता परमात्मा पर यह बात लागू नहीं होती । महापुरुषों के जन्म हम इसलिये मनाते हैं कि आगामी पीढ़ियाँ उनके पद्चिह्नों पर चलकर उन्नत हो सकें ।

हम देखते हैं कि हमारे देश में अनेक सम्प्रदाय हैं, उनमें भी सनातन धर्म में पाँच सम्प्रदाय हैं—वैष्णव , शैव, शाक्त, सौर्य व गाणपत्य । इन सम्प्रदायों के अलग सिद्धान्त हैं जैसे —विशिष्टाद्वैत, विशुद्धाद्वैत, द्वैत, अद्वैत, दैताद्वैत, अचिन्त्यभेदाभेद, ब्रह्माद्वैत आदि । इन सिद्धान्तवादियों के विचारों का आधार प्रस्थानत्रयी है । प्रस्थानत्रयी ग्रंथ है—उपनिषद्, वेदान्तदर्शन और गीता । वस्तुतः 'रामचरितमानस' इन सब सम्प्रदायों के लिए आदर्शग्रंथ है । नारद जी सनत कुमार के चरणों में बैठकर पूछ रहे हैं—

भगवन् आप मुझे वह विद्या बता दीजिए जिसको जानने के पश्चात् और कुछ जानना शेष ही नहीं रहता । अतः उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता का मूल विषय है ब्रह्म, वेदांतदर्शन क्या है और धर्म क्या है ।?

वैदिक काल में हमारे देश में मूर्तिपूजा प्रचलित नहीं थी । सर्वप्रथम अवतारवाद को मानने के कारण ही जैनियों और बौद्धों ने मूर्तियों का निर्माण किया । पंडित रामावतार अपनी पुस्तक 'ईश्वरवाद' में लिखते हैं कि सर्वप्रथम श्रीकृष्ण की मूर्ति का निर्माण एवं पूजन आरम्भ हुआ फिर श्रीराम का । यही कारण है कि हमारे देश में सबसे अधिक मंदिर श्रीकृष्ण के हैं न कि श्रीराम के । बाल्मीकि रामायण में श्रीराम लक्ष्मण को मूर्छित अवस्था में देख बहुविधि विलाप करते हुए कहते हैं—

किं मया दुष्कृतं कर्ममन्यत्र जन्मनि ।
येन मे धमिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थित ।। —युद्धकाण्ड 101.19

न मालूम मैंने पूर्व जन्म में क्या दुष्कर्म किया है जिसके फलस्वरूप मेरा धार्मिक भ्राता मेरे सामने ही मर रहा है । वस्तुतः बाल्मीकि रामायण का श्लोक अवतारवाद पर वज्र प्रहार तुल्य है । इस श्लोक से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीराम मनुष्य थे, परन्तु वेदानुकूल आचरण करने के कारण पुरुषों में उत्तम अर्थात् पुरुषोत्तम कहलाये ।

पौराणिक भाइयों का विचार है कि जब पाप बढ़ जाते हैं और धर्म का ह्रास होता है तो ईश्वर अवतार धारण करते हैं । इसकी पुष्टि में वे गीता के दो श्लोक प्रस्तुत करते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। —4.7-8

तनज़्ज़ल (पतन) पे जिस वक्त आता है धर्म–
अधर्म आके करता है बाज़ारू गर्म ।
यह अंधेर जब देख पाता हूँ मैं,
तो इन्साँ की सूरत में आता हूँ मैं ।।
भलों को बुरों से बचाता हूँ मैं,
बुरों को जहाँ से मिटाता हूँ मैं ।
जड़ें धर्म की फिर जमाता हूँ मैं,
अयाँ (प्रकट होना) हो के युग-युग में आता हूँ मैं ।।

हे अर्जुन ! जब जब धर्म की हानि एवं पाप की वृद्धि होती है, तब तब ही मैं अपना रूप धारण करके लोगों के सामने प्रस्तुत होता हूँ । इस प्रकार मैं साधुओं की रक्षार्थ एवं दुष्टों के विनाश के हेतु और धर्म की रक्षा के लिये मैं युग-युग में जन्म लेता हूँ । इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द कहते हैं कि यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ तो कोई दोष नहीं हैं क्योंकि परोपकाराय सतां विभूतयः परोपकार के लिए सन्त पुरुषों का तन, मन, धन होता है । तथापि श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते । इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता में एक श्लोक भी ऐसा नहीं जहाँ यह कहा गया हो कि ईश्वर अवतार लेता है । अपितु श्रीकृष्ण एक महापुरुष थे न कि ईश्वर । अतः इन श्लोकों से अवतारवाद सिद्ध नहीं होता । चारों वेदों में वर्णित 20,416 मंत्रों का स्वाध्याय करने के बाद पता चलता है कि इनमें एक भी ऐसा मंत्र नहीं है जहाँ ईश्वर को शरीरधारी कहा गया है । ऋग्वेद में ईश्वर को अज के नाम से पुकारा गया है जिसका अर्थ है अजन्मा । इस भाँति यजुर्वेद में उसे ''अकायम् अस्नाविरम्'' कहा गया जिसका अर्थ है वह शरीर और नसनाड़ी के बंधन से रहित है ।

योगिराज श्रीकृष्ण ने ''गीता'' में जो उपदेश दिया वह इतना विस्तृत नहीं हो सकता। जहाँ पर युद्ध के लिये दोनों सेनाएं तैयार खड़ी हों वहाँ पर इतने लम्बे व्याख्यान का समय कहाँ हो सकता है? यह उपदेश तो ''गीता'' के दूसरे अध्याय के 39वें श्लोक तक समाप्त हो जाता है। युद्ध के समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आत्मा की अमरता का उपदेश देकर ही युद्ध के लिये तैयार किया। महाभारत के युद्ध के बाद जब हमारे देश में अनेक मत फैले तो हमारे सभी ग्रंथों में मिलावट कर दी गई। गीता भी इस मिलावट से अछूती न रहीं और इस प्रकार 70 श्लोकों की गीता 700 श्लोकों की हो गई। श्रीकृष्ण वेद वेदांग के प्रकांड पंडित थे। अवतारवाद को सच्चा सिद्ध करने के लिए ही ''गीता'' में मिलावट कर दी गई। उपर्युक्त श्लोकों के आधार पर तीन कारणों के कारण परमात्मा का अवतार होता है–

(1) साधु की रक्षा करना, (2) दुष्टों को दंड देना, (3) धर्म की स्थापना।

परन्तु किसी भी अवतार ने ये काम नहीं किये। जबकि यह कहा जाता है कि दुष्टों को मारने के लिये ईश्वर अवतार लेता है तो इस उत्तर को सुनकर हँसी आती है क्योंकि किसी भी वस्तु का बनाना कठिन है परन्तु बिगाड़ना सरल, जब ईश्वर बिना शरीर धारण किये ही रावण, कंस, जरासंघ आदि का निर्माण कर सकता है तो वह मार भी सकता है। उसे अवतार धारण करने की क्या आवश्यकता है? आधुनिक विश्व में लगभग 204 देश हैं परन्तु इन सब में से भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ 24 अवतारों ने जन्म लिया। यहाँ तक कि इन सब अवतारों का जन्म उत्तर प्रदेश में ही हुआ न कि भारत के किसी अन्य राज्य में। भविष्यपुराण के अनुसार 25वाँ कल्कि अवतार का जन्म भी उत्तरप्रदेश में ही होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यहाँ पर ही सबसे अधिक पापी हैं। अवतारवादी विचारों और इस पापपूर्ण विचार का परित्याग करें, क्योंकि पौराणिक भाइयों का विचार है कि यदि ईश्वर अवतार न लेता तो रावण, कंस आदि दुष्टों को कौन मारता? इसका शंका समाधान करते हुए महर्षि दयानन्द कहते हैं–

जो ईश्वर शरीर धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय करता है। उसके सामने कंस, रावण आदि एक कीड़ी के समान भी नहीं थे।

वस्तुतः संसार के वर्तमान आध्यात्मिक-संकट की चुनौती सुप्त हृदय को जागृत करेगी। जिस हृदय पर चोटकर उसे जगा देती है उसे ही अवतार के नाम से पुकारा जाता है। वह ईश्वर का अवतार न होकर समूचे समाज की पुकार को समझकर अवतार बन जाता है। जैसे डा० हैडगेवार जी ने भी कहा है–

जहाँ कहीं भी कर्त्तव्यशाली या विचारवान् व्यक्ति उत्पन्न हुआ कि बस उसे अवतार की श्रेणी में ढकेल देते हैं। महान् विभूति को देखने भर की देर है कि रख तो दिया गया उसे देवालय में। वहाँ उसकी पूजा तो बड़े मनोभाव से होती है, किन्तु उसके गुणों के अनुकरण का नाम तक नहीं लिया जाता।

अतः श्रीनिवास शास्त्री लिखते हैं– (To me Shri Ram is not divine) मैं श्रीराम जी को ईश्वर नहीं मानता हूँ।

–Leatures on Ramayana P-8

(1) सारे संसार की उन्नति करने वाला परमात्मा अवनति को प्राप्त हो जाता है वह नारायण से नर बन जाता है।

(2) पाखण्डी लोग स्वयं को परमात्मा के अवतार कहने लग जाते हैं और भोले भाले व्यक्तियों को अपने जाल में फंसाकर लूटते हैं।

(3) लोग अत्याचार सहने लग जाते हैं। बहन-बेटियों की इज़्ज़त लूटते हैं।

(4) इसको मानने से यह भी बड़ी हानि है कि कोई भी व्यक्ति महान् बनने का प्रयास नहीं करता क्योंकि उसके विचारो में महान् कार्य तो ईश्वर ही कर सकता है।

यहाँ तक कि अब तो हमारे देश में भगवानों की संख्या लगभग 600 हो गई है। जैसे भगवान् साईंबाबा जी, भगवान् रजनीश (ओशो) जी आदि। सनातन धर्म के मुख्य तीन सम्प्रदाय हैं वे आपस में इतने लड़ते झगड़ते हैं। इन सम्प्रदायों के नाम निम्नलिखित हैं–

(1) शैव सम्प्रदाय – इस सम्प्रदाय के अनुयायी अवतारवाद को नहीं मानते हैं । इनका विचार है कि शिव ही ईश्वर है । वही सृष्टि के निर्माता, पालनकर्ता और संहारकर्ता है और वह सदा अमर है ।

(2) शाक्त सम्प्रदाय – यह सम्प्रदाय भी अवतारवाद को नहीं मानता । इनके मतानुसार शक्तिमाता ही सब कुछ है ।

(3) वैष्णव सम्प्रदाय – यह सम्प्रदाय ही केवल अवतारवाद को मानता है । इनके अनुसार ईश्वर के 24 अवतार हुये, जिनका श्रीमद्भागवत् पुराण में वर्णन है । परन्तु इनमें से मुख्य 10 अवतार हैं, जिनका उल्लेख अधोलिखित पंक्तियों में किया जाता है–

(1) सतयुग – इस युग में चार अवतार हुये । मच्छ, कच्छ, सुअर और नरसिंह । जब तीन अवतारों को बिहार वाले खा गये तो प्रह्लाद की रक्षा के लिये नरसिंह का अवतार हुआ ।

(2) त्रेतायुग – इस युग में तीन अवतार हुये । वामन, रामचन्द्र और परशुराम । एक ही काल में हुये और बड़े मजे की बात तो यह है कि वे एक दूसरे को पहचान न सके बल्कि आपस में लड़ते रहे । यहाँ तक कि परशुराम ने तो 21 बार क्षत्रियों का नाश किया और उनकी रक्षा नहीं की । जब परमात्मा एक है तो श्रीराम व परशुराम एक ही समय में दो अवतार कैसे हो गये । इससे सिद्ध होता है कि अवतारवाद एक ढोंग है निरा पाखण्ड है ।

(3) द्वापर युग– क्या यह अवतारवाद का मज़ाक नहीं है कि महाभारत काल में वेदव्यास, बलराम और कृष्ण तीन अवतारों ने क्यों एक साथ जन्म लिया? एक ही अवतार से समूचा कार्य क्यों नहीं पूरा कराया गया? क्या अवतार भी अच्छी बुरी किस्म के होते हैं? अब एक प्रश्न यह पैदा होता है कि विष्णु के एक साथ ही तीन अवतार कैसे पैदा हो गये? श्रीकृष्ण और बलराम इन दोनों का ही एक घर में पालन पोषण हुआ ।

(4) कलियुग – भविष्य पुराण के अनुसार इस युग में कल्कि अवतार

सम्बल नामक स्थान पर जोकि जिला मुरादाबाद, उत्तरप्रदेश में है एक ब्राह्मण के घर होगा—जोकि घोड़े पर सवार होगा और जिसके हाथ में तलवार होगी ।

जब अवतारों का लक्ष्य अत्याचारों एवं पापों का नाश और धर्म की स्थापना करना ही है तो जिन युगों में धर्म अधिक था तब अवतारों का आविर्भाव क्यों हुआ ? जब कलियुग में तीन चरण पाप होते हैं तब केवल मात्र एक ही अवतार क्यों होता है ? जबकि अधिक अवतारों का प्रादुर्भाव कलियुग में ही होना चाहिये । विष्णु पुराण के अनुसार श्रीराम 12 कलाओं और श्रीकृष्ण 16 कलाओं के अवतार माने जाते हैं । ये दोनों ही विष्णु के अवतार हुये । हम देखते हैं कि पौराणिक भाई श्रीराम को 14 कला के अवतार और श्रीकृष्ण को 16 कला के अवतार मानते हैं । यहाँ तक कि वे श्रीकृष्ण को पूर्णावतार के रूप में पुकारते हैं । अब प्रश्न उठता है कि क्या भगवान् भी छोटे व बड़े होते हैं ।

वस्तुतः कलाओं के आधार पर प्रभु को छोटा बड़ा सोचने की शंका पूर्णतः निर्मूल एवं व्यर्थ है । हम जानते हैं कि श्रीराम व कृष्ण क्रमशः सूर्यवंशी व चंद्रवंशी क्षत्रिय थे । श्रीराम का जन्म चैत्र शुक्ल नवमी को दोपहर 12 बजे कर्क लग्न में हुआ था । उस समय सूर्य उच्च का था । दोपहर 12 बजे अभिजित मुहूर्त में सूर्य अपने प्रचण्ड यौवन पर होता है । क्योंकि सूर्य की 12 कलायें होती हैं । इस कारण लोगों ने श्रीराम को 12 कला का अवतार कह दिया । इसी प्रकार श्रीकृष्ण का जन्म भाद्र कृष्ण अष्टमी रोहिणी नक्षत्र अंधेरी रात को 12 बजे वृषभ लग्न में हुआ था । अष्टमी का चन्द्रमा पूर्णवली के नाम से जाना जाता है । क्योंकि ज्योतिष के अनुसार चन्द्रमा की 16 कलायें होती हैं । ऐसे ही काल में चंद्रवंशी होने के कारण श्रीकृष्ण और चन्द्रमा की 16 कलायें होने से लोगों ने श्रीकृष्ण को 16 कलाओं का अवतार कहना आरम्भ कर दिया । महर्षि दयानंद ''भागवत खंडनम्'' में लिखते हैं—

यज्ञ ही विष्णु है ऐसा श्रुति का कथन होने से यज्ञ का करने वाला ही वैष्णव (विष्णुभक्त) है अन्य नहीं ।

श्रीकृष्ण 16 कला सम्पूर्ण थे जोकि पूर्णावतार माने जाते हैं । यह कैसे पूर्णावतार थे जबकि इन्हों के जीवनकाल में ही इनके एक मात्र पुत्ररत्न प्रद्युमन एवं पौत्र अनिरुद्ध की अकाल मृत्यु हो गई । यहाँ तक कि स्वयं श्रीकृष्ण की मृत्यु उनके पिता वासुदेव से पहले हो गई थी । पूर्णावतार होते हुए भी श्रीकृष्ण अपनी संतति को अकाल मृत्यु के चंगुल से नहीं बचा सके तो इन्हें पूर्णावतार मानना तर्कसंगत एवं युक्तियुक्त नहीं है । इसके अतिरिक्त अब प्रश्न उठता है कि कला क्या है? इसका उत्तर यजुर्वेद 8.36 व 32.5 और प्रश्नोपनिषद के छठे प्रश्न में व महर्षि दयानंद ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (वेद विषय विचार) में इस प्रकार लिखते हैं–

(1) ईक्षण (यथार्थ विचार), (2) प्राण, (3) श्रद्धा (आस्था), (4) आकाश, (5) वायु, (6) अग्नि, (7) जल, (8) पृथ्वी, (9) इन्द्रियाँ, (10) मन (11) अन्न, (12) वीर्य बल एवं पराक्रम, (13) तप (धर्मानुष्ठान), (14) मंत्र (वेदविद्या), (15) कर्म (सद्चेष्टा), (16) नाम ।

पुराणों में जितने भी अवतार हुए वे सब के सब मुख्यतः अधोलिखित तीन कारणों से हुये ।

(1) वरदान – एक राजा और रानी के कोई भी पुत्र नहीं था । इसलिये उन्होंने घोर तपस्या की और ईश्वर से पुत्र की माँग की । अतः ईश्वर के वरदान के कारण ही राम और कृष्ण का अवतार हुआ ।

(2) शाप – पुराणों में एक कथा आती है कि एक अत्यंत सुन्दर राजकुमारी स्वयंवर रचना चाहती है । ऐसा समाचार सुनकर नारद जी स्वयंवर में भाग लेने से पूर्व विष्णु के पास गये और कहा कि मुझे सुन्दर रूप प्रदान कीजिए क्योंकि नारद जी कुरुप थे । परन्तु विष्णु जी के मन में लालच आ गया कि क्यों न मैं उस सुन्दर राजकुमारी के साथ विवाह कर लूँ । इसलिये विष्णु जी ने नारद का मुख बन्दर के समान बना दिया और स्वयं वर मंडल में चले गये । राजकुमारी ने वरमाला नारद की अपेक्षा विष्णु के गले में डाल दी ।

इस कारण क्रोधित होकर नारद ने विष्णु को शाप दे दिया कि जिस प्रकार मैं स्त्री वियोग में तड़प रहा हूँ इसी प्रकार तू भी रामावतार में स्त्री वियोग में तड़पेगा। फिर रामावतार में स्त्री वियोग के कारण राम को अति दुःख हुआ। इस भाँति पुराणों में एक और प्रसंग आता है कि विष्णु के जालंधर की पत्नी वृन्दा से कुकर्म किया फिर उसके पति के शाप के कारण ही रामावतार हुआ।

(3) कर्मफल – मानव जो कर्म करता है उसका फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। देवता और मानव सब कर्मफल भोगते हैं क्योंकि (देह धारण) का कारण कर्मफल का भोग करना ही है, बिना कर्मफल भोग के देह नहीं मिल सकती। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कृष्ण आदि सब पाप करते हैं और उन्हीं पापों का फल उनको मिलता है। इसी कर्मफल के कारण श्रीराम सीताहरण पर पक्षियों, वृक्षों आदि से व्याकुल होकर सीता जी का पता पूछते हैं। फिर रावण को मारकर सीता को अग्नि परीक्षा के बाद अपनाया जाता है। इसी कर्मफल से श्रीकृष्ण को कारागार का फल भोगना पड़ा और वे जरासंध के डर के मारे द्वारिका में भाग गये फिर उनकी व्याध के वाण से लगभग 125 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई। स्वर्गीय अमरस्वामी जी ने भी अपनी पुस्तक 'आर्य सिद्धान्त सागर' (प्रथमभाग) में अवतारवाद के विरुद्ध 800 प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। इसलिए पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय लिखते हैं–

> **यह कहना कि ईश्वर अवतार ले सकता है, उसका अपमान करना है। ईश्वर कौशल्या या देवी के गर्भ में से पहले मौजूद था, क्योंकि वह सर्वव्यापक है और हमेशा ही व्यापक रहा। फिर यह कहना कि वह गर्भ में आया, गर्भ से बाहर आया आदि सब भ्रममूलक अथवा भ्रम में डालने की बातें हैं।**
>
> –अवतार पृ० 9

सनातन धर्म के अनुसार तो यह भी सिद्ध होना कठिन है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव और दुर्गा इन चारों में से ईश्वर कौन है? पुराणों में कहीं ब्रह्मा को, कहीं शिव को, कहीं विष्णु को और कहीं शक्ति को महान् पद से विभूषित

किया गया है और कहीं इनकी प्रशंसा और कहीं निन्दा की गई है। यहाँ तक कि भागवत् महापुराण में ब्रह्मा जी को पुत्रीगामी कहा गया है फिर यह अवतार कैसा? दरअसल भगवान् वह होता है जिसमें अधोलिखित गुण हों–

भगवान् के अध्यात्मिक गुण– (1) ज्ञान, (2) धर्म, (3) वैराग्य।

भगवान् के भौतिक गुण– (1) यश, (2) वैभव, (3) ईश्वरीय।

वस्तुतः बात यह है कि जहाँ कहीं भी कोई कर्त्तव्यशील व्यक्ति उत्पन्न हुआ कि बस हम उसे अवतारों की श्रेणी में धकेल देते हैं। उस पर देवत्व लादने में तनिक भी देर नहीं लगाते। हम किसी भी श्रेष्ठ व्यक्ति को आदर्श अथवा महापुरुष मान सकते हैं परन्तु अवतार नहीं। क्योंकि इससे आत्महीनता की प्रवृत्ति का उदय होता है। आत्महीनता आत्महत्या है। क्योंकि अवतारवाद को मानने से हम समझने लगते हैं कि हम महापुरुष नहीं बन सकते अपितु ईश्वर को केवल ऐसा करने का अधिकार है न कि मानव को। इससे हमारे आत्मविश्वास को ठेस लगती है जो कि जीवन की सफलता का मूलमंत्र है। रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, गांधीजयन्ती, दयानन्दबोधोत्सव आदि पर्व हम इसलिये मनाते हैं ताकि युगों युगों के उपरांत भी हमारा राष्ट्र इन पवित्र चरित्रों से प्रेरणा प्राप्त कर सकें। जिस देश के जितने आदर्श चरित्र होते हैं वह देश चरित्र एवं आचार-विचार की दृष्टि से उतना ही ऊँचा उठ जाता है। हमारे देश के पास जब तक श्रीराम एवं श्रीकृष्ण जैसे दिव्य चरित्रवान् पुरुष रहे हमारा देश विश्व गुरु बना रहा।

कवि भावोद्गारों की यह शीतल बासिधार अवतारवाद की विस्तृत मरुस्थलों में सूख जाती है। प्रत्येक पाप के समर्थन के लिये अवतारवादी के पास ओट है। 'लगे रगड़ा और मिटे झगड़ा' का घोष करने वाले भंगड़ियों से आप पूछिये कि बुद्धिनाशिनी भंग का सेवन आप क्यों करते हैं? तो झट शिवजी को लाकर खड़ा कर देंगे। धोखेबाज, छल, कपट, झूठ, मक्कारी, वामाचार, मांस, मदिरासेवन, परस्त्रीगमन आदि सभी पापों के समर्थन के निमित्त अवतारवाद तैयार है। अनेक पाखण्डों की पोषक मूर्तिपूजा का

अभिशाप भी अवतारवाद की कल्पना का परिणाम है। अवतारवाद ने धर्म की रूढ़िगत कर्मकाण्ड बनाकर रख दिया, सदाचार को बुहारी दे दी गई। धर्म आचरण की चीज न रहकर, ''सौगंध खाने'' के काम का रह गया। सब कुछ पापाचार करने पर भी अवतारवाद की ओट में सब कुछ माफ था। ऐसी दशा में बुद्धिजीवियों द्वारा धर्म और ईश्वर का विरोध स्वाभाविक था। उर्दूशायर अकबर के शब्दों में–

ख़ुदा के बंदों को देखकर ही, ख़ुदा से मुनकरि हुई है दुनियाँ।
कि ऐसे बन्दे हो जिस ख़ुदा के, वह कोई अच्छा ख़ुदा न हों।।

गांधी जी जब जीवित थे तभी बिहार के बुद्धिविहीन अन्य भक्तों द्वारा उनकी मूर्ति का निर्माण किया गया और टन टन और पूं पूं का दौर चल पड़ा। उन्होंने अपने पत्र 'हरिजन' में इन बुद्धिहीन अंधे-शिष्यों की वह खबर ली कि उनके ''औंधे नगाड़े हो गये। उन्होंने डांटते हुए कहा था–

भोले भाइयो! मैं एक साधारण मनुष्य मात्र हूँ, उससे अधिक कुछ नहीं। हर कोई मेरे जैसा बन सकता है। मेरे में कोई चमत्कार और ऐसा कुछ नहीं है जो दूसरे मनुष्यों की पहुँच से परे हो। मेरी मूर्ति बनाकर मुझे जिन्दा ही मारने की कोशिश मत करो। यदि तुम्हें मेरी भक्ति सवार हुई है तो मेरी भक्ति का अर्थ है–मेरे 14 सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम का आचरण और प्रचार-प्रसार।

इसके बावजूद आज गाँधी जी को ईश्वर बनाने का भरसक प्रयत्न हो रहा है। लगभग आधा ईश्वर तो उन्हें बना ही दिया गया है। दिल्ली में राजघाट पर जाकर कोई भी देख सकता है कि आज गांधी जी की कब्र की पूजा आरम्भ हो चुकी है। गांधी जी के चरित्र की पूजा का स्थान उनकी चित्र पूजा ने ले लिया हैं और इस कारण फूलों के ढेरों के नीचे दबी गाँधी जी की आत्मा जिस प्रकार आज कराह रहीं है इसका अत्यंत सुन्दर चित्रण एक हिन्दी कवि ने अधोलिखित पंक्तियों में इस प्रकार किया है–

मानव, केवल मानव गांधी
जय मानव, जय मानव गांधी।

कहना है गांधी को ईश्वर, करना है गांधी को पत्थर,
देखो जिसकी आत्म-शक्ति से कांप उठी बर्बरता थर थर
वह मनुष्य कुल का सपूत था—मानव केवल मानव गांधी
जय मानव, जय मानव गांधी।।

नत्थू राम गोडसे गांधी जी के हत्यारे माने जाते हैं, इसका कोई तो कारण होगा? यह बहुत से लोग जानते हैं। उसने तो उनका शरीर मात्र ही लिया था। इसके विपरीत गांधी जी की कब्र पूजा करने वाले गांधी के सिद्धान्तों एवं आदर्शों की हत्या के रूप में गांधी जी की आत्महत्या का पाप कर रहे हैं। संसार के प्रत्येक देश और प्रत्येक युग में युग पुरुष, लोकनायक, महापुरुष जन्म लेते रहे हैं और लेते रहेंगे। वे औरों के सुख में अपना सुख और दुःख में अपना दुःख मानते हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, कबीर, नानक, गांधी, मुहम्मद, ईसा, महर्षि दयानंद आदि अपने-अपने युग के महापुरुष हुए हैं। पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय लिखते हैं—

राम, कृष्ण आदि महापुरुष अवश्य थे। उनमें असाधारण चातुर्य व अद्भुत शक्ति थी। परन्तु कोई ऐसी बात नहीं मिलती जो उनको ईश्वर सिद्ध कर सके। —अवतार पृ० 10

इस प्रकार ये महापुरुष अपने तप, त्याग, तपस्या और उच्चादर्शों से ये ईश्वरीय गुणों को धारण कर जन-जन की श्रद्धा के पात्र बन गये हैं। यही श्रद्धा अति श्रद्धा जन-जन की श्रद्धा में और अंध श्रद्धा में बदलकर अवतार, पैगम्बर, ईश्वर का इकलौता पुत्र आदि झूठ और नाशकारी कल्पनाओं को जन्म देती रही है। अतः ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ है जैसे कि महर्षि दयानंद ने आर्य समाज के 10 नियमों में उसकी व्याख्या की है। वह मन, बुद्धि से परे है।

वस्तुतः अवतारवाद का सिद्धान्त निराधार एवं निर्मूल है और अपने महापुरुषों को परमात्मा का अवतार बताना हमारी भूल है। पौराणिक मित्र जो महापुरुषों को ईश्वर का अवतार बताते हैं इस सिद्धान्त से तो ईश्वर एवं

महापुरुषों दोनों का ही वे अपमान करते व कराते हैं। इस प्रकार सर्वशक्तिशाली परमात्मा को ये अल्पशक्ति वाला बनाते हैं। इन्हें मच्छ, कच्छ व सुअर जैसी निकृष्ट योनियों में दिखाते हैं और इस प्रकार इन्हें मृत जीवों के मांस, विष्ठा आदि खाने वाले जीवों में बिठाते हैं। वे भी कैसे आस्तिक हैं, जो ईश्वर के भक्त बनकर इस प्रकार उसका अपमान करते व कराते हैं और मर्यादा पुरुषोत्तम राम एवं योगिराज श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों के शिक्षादायक स्तुत्य, श्लाघनीय एवं अनुकरणीय कार्यों पर तो ध्यान नहीं देते हैं किन्तु इनके स्वांग बनाकर इन्हें रास लीलाओं में नचाते हैं और इनसे भीख तक मंगवाते हैं। अतः धर्म सभा के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि दयानंद जी ने कहा था—

जिनको आप परमेश्वर का अवतार कहते हैं वे ईश्वरावतार तो नहीं, किन्तु बड़े उत्तम पुरुष थे। वे परमेश्वर की आज्ञा में चलने वाले थे। सत्य, न्याय आदि गुणों से अलंकृत और वेदशास्त्र के पूर्ण विद्वान् थे। उन जैसा उत्तम पुरुष न पहले हुआ और न अब है। आप उन उत्तम पुरुषों को ईश्वरावतार मानते हैं, यह आपकी भारी भ्रांति है। जो अजर, अमर और सर्वव्यापक है वह यह अवतार धारण नहीं कर सकता। जो सर्वत्र परिपूर्ण है उसे अवतार धारण करने की आवश्यकता ही क्या है? अवतार लेने से सर्वत्र परिपूर्ण नहीं रह सकता। यदि कहो कि दुष्टों को दण्ड देने के लिये परमेश्वर यह धारण करता है तो यह भी अयुक्त है। जो बिना देह के सृष्टि उत्पत्ति, पालन और प्रलय करता है। क्षुद्र कार्य के लिये उसके काया धारण की कल्पना करना कितना तुच्छ और मिथ्या विचार है।

निष्कर्षतः यही कहना उचित होगा कि अवतारवाद, एक कोरा ढोंग एवं पाखण्ड है। वस्तुतः इसके विषय में 'न भूतो न भविष्यति' की उक्ति चरितार्थ होती है। अतः ईश्वर का अवतार न तो भूतकाल में कभी हुआ, न ही वर्तमान में होता है और न कभी भविष्य में भी होगा। पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय लिखते हैं—

राम, कृष्ण को ऐतिहासिक महापुरुष समझकर उनका जीवन चरित्र पढ़ो और उनके आचरणों का अनुसरण करो। परन्तु उनकी मूर्ति बनाकर उनको ईश्वर के स्थान में मत पूजो क्योंकि ईश्वर के स्थान पर अन्य का पूजना पाप है।

—अवतार पृ० 16

पं० सत्यपाल 'पथिक' जी ने ''भगवान का अवतार'' नामक कविता में अवतारवाद के विषय में लिखा है—

होता कभी भगवान् का अवतार नहीं है।
इससे किसी विद्वान् को इनकार नहीं है।
जो समझता है ईश्वर किसी मनुष्य को।
वह समझ लीजिए कि समझदार नहीं है।
जो काम करता है प्रभु उस काम के लिये।
औरों की मदद का वह तलबगार नहीं है।
दीपक पुजारी हाथ में लेकर के यों कहो।
पत्थर है लोगो देख लो दातार नहीं है।
कैसे बना ली आदमी ने ''पथिक'' ये मति।
ईश्वर तो निराकार है साकार नहीं है।।

पत्थर पूजा से बुद्धि का विनाश—

पत्थर पूजा से होता है बुद्धि का नाश
चेतन ईश्वर का सबके हृदय में वास
अनुभव करो पाप कर्म करते आत्मा कांपे
पुण्य करो भय नहीं मन में प्रसन्नता जागे
ईश्वर को पाना है तो पाप कमाना छोड़ दो
पत्थर पूजा छोड़ कर निराकार से नाता जोड़ दो
जब ईश्वर आपके अन्दर में फिर क्यों जाते मन्दिर में
मात-पिता की सेवा करो ईश्वर तो बैठा है उनके अन्दर में
आत्मा में भय दिखा कर ईश्वर पाप से रोकता
ईश्वर साकार होता तो पाप करते समय टोकता।

—लालचन्द चौहान

4. स्वाध्याय

मानव जीवन की सार्थकता आश्रम से है ।

आश्रम शब्द की सार्थकता स्वाध्याय श्रम से है । ।

मस्तिष्क को स्वाध्याय की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि शरीर को व्यायाम की ।

हम देखते हैं कि जिस प्रकार एक पर्वत से निकलकर बहने वाली सरिता अपना मार्ग अनेक कठिनाइयों के बावजूद संघर्ष करते हुए बनाती है, मानव भी अनेक कटु-मृदु अनुभवों की पाठशाला में शिक्षण प्राप्त करता चलता है । वस्तुतः ज्ञान प्राप्ति का यह मार्ग बड़ा लम्बा है । जिस प्रकार आहार के अभाव से हमारा शरीर दुर्बल एवं कृशकाय हो जाता है, उसी प्रकार मन, बुद्धि और जिज्ञासा को भोजन न देने से हमारी मानसिक उन्नति नहीं हो पाती । अतः गुरु से अध्ययन पूरा करने के पश्चात् विदा लेते समय गुरु शिष्य को यही अंतिम उपदेश दिया करता था–

स्वाध्यायात् मा प्रमद ।

हे प्रिय शिष्य ! अपने भावी जीवन में स्वाध्याय द्वारा योग्यता बढ़ाने में आलस्य मत करना ।

प्रत्येक पुस्तक को पढ़ने से स्वाध्याय नहीं होता, अपितु जिन ग्रंथों के अध्ययन से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना की प्रेरणा मिले वस्तुतः वही स्वाध्याय है । स्वाध्याय जीवन विकास के लिए एक आवश्यकता है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को पूरा करना चाहिये । अनेक व्यक्ति परिस्थितिवश पढ़-लिख नहीं पाते और उन्हें शिक्षा एवं स्वाध्याय के महत्त्व का ज्ञान नहीं होता है, तब वे हाथ मलमल कर पछताते हैं । जार्ज वाशिंगटन के मन में स्वतंत्रता की अग्नि पुस्तकों ने लगाई थी । रोम्या रोलाँ के उपन्यास ''जा, क्रिस्तोफ'' ने हज़ारों लोगों में नई क्रांति जगाई । मेरीस्टो की पुस्तक ''राम काका की कुटिया'' ने अमेरीका एवं पाश्चात्य जगत् में क्रांति मचा दी थी । इसी प्रकार 'गोर्की के ''माँ'' उपन्यास ने रूस को हिला दिया था । भारतीय

क्रांतिकारियों के जीवन में लोकमान्यतिलक के ''गीतारहस्य'', बाबू शरतचन्द्र के ''पथेरदावी'' बंकिम के ''आनंदमठ'' की विशेष भूमिका रही है। महर्षि दयानंद, विवेकानंद एवं अरविन्द की कृतियों ने अनेक अभिनव राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों को शक्ति प्रदान की। विशेषतः महर्षि दयानंद कृत ''सत्यार्थप्रकाश'' नामक अमर ग्रंथ ने तो 19वीं शताबदी के युवकों में राष्ट्रीयता एवं स्वतंत्रता की ज्योति जगा दी। सिसरो ने भी लिखा था–

अच्छी पुस्तकों को घर में संचित, संग्रहित करना घर को देव मंदिर बनाना है।

स्वाध्याय की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए स्वामी विद्यानंद सरस्वती लिखते हैं–

पढ़ने वालों को तीन कोटियों में विभक्त किया गया है– उत्तम, उत्तमतर तथा उत्तमतम। जो केवल पाठ मात्र पढ़ता है किन्तु उसका अर्थ नहीं जानता वह उत्तम है, क्योंकि कुछ भी न करने वाले से तो वो अच्छा है। अर्थज्ञानपूर्वक पढ़ने वाला उत्तमतर है। और जो अर्थ सहित पढ़कर तदनुसार आचरण के द्वारा उसे आत्मसात् कर लेता है वह उत्तमतम कोटि का मनुष्य है।

–भूमिका भास्कर पृ० 805

इस कारण विभिन्न ग्रंथों में स्वाध्याय महिमा का वर्णन विभिन्न प्रकार से किया गया है–

गिमीहि श्लोकमास्ये पुर्जन्यइव ततनः। गाय गायत्रमुक्थयम्।।

–ऋ० 1.38.14

हे विद्वानों से विद्या पढ़े हुए मनुष्यो! तुम लोगों को उचित है कि सब प्रकार प्रयत्न के साथ अपनी वाणी को वेदविद्या से सुसंस्कृत करके, वाचस्पति के समान वक्ता होकर वायु आदि पदार्थों के गुणों की स्तुति व उपदेश किया करो।

जो सीखो किसी को सिखाते चलो।
दिये को दिये से जलाते चलो।।

इसलिये आध्यात्मिक उन्नति के तीन साधन हैं—प्रभुभक्ति, सत्संग एवं स्वाध्याय। अच्छे ग्रंथ वरदान हैं और बुरे अभिशाप।

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतः रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे, क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्।। —ऋ० 9.67.32

जो व्यक्ति वेदाध्ययन करता है। उसे माता के समान स्वयं सरस्वती विद्या नाना प्रकार के रसों— दूध, घी, मधु आदि का अपने विज्ञानमय स्तनों से पान कराती है।

सत्य सेत् सर्व कर्मणि वेद मेकं नन सन्य सेत।
वेद सन्यासतः शूद्रः तस्मद्वेद्वं न सव्य सेत्।। —मनुस्मृति 9.95

सभी कार्यों को चाहे व्यक्ति त्याग दे, परन्तु वेद को न त्यागे, क्योंकि स्वाध्याय ही ऐसा श्रम है जो चारों आश्रमियों के लिए परमावश्यक है। चाणक्य लिखते हैं—

श्लोकेन व तदर्धेन पादेनैकाक्षरेण वा।
अवन्द्यं दिवस कुर्याद् दानाध्ययनकर्मभिः।। —चाणक्य नीति 2.13

व्यक्ति को चाहिये कि प्रतिदिन एक श्लोक, आधा श्लोक, एक पाद अथवा अक्षर का स्वाध्याय करे और दान, अध्ययन करता हुआ ही दिन को सार्थक करें। स्वाध्याय की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आनंद स्वामी जी लिखते हैं—

आज हम स्वाध्याय की ओर ध्यान ही नहीं देते। हिन्दू जाति का और भारत वर्ष का सब से बड़ा रोग यही है। हमने अपने पवित्र तथा ऋषि प्रणीत ग्रंथों का पढ़ना त्याग दिया। हमारे अधःपतन का सबसे बड़ा कारण स्वाध्याय को छोड़ देना है। —हरिद्वार का प्रसाद पृ० 14.15

इस द्यौलोक एवं पृथ्वीलोक में जो कोई भी श्रम है, स्वाध्याय उन सबकी पराकाष्ठा है। —शतपथब्राह्मण 11.5.7.2

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः। —योगदर्शन 2.44

स्वाध्याय से स्वाध्यायशील व्यक्तियों को अभीष्ट गुणवान, विद्वानों का साक्षात्कार होता है। अतः इष्ट देवता का सम्प्रयोग होने से स्वाध्याय को परमयोग के नाम से अभिहित किया गया है।

इसी कारण स्वाध्याय को वेदों में ''परमरस'', ''शतपथब्राह्मण'' में ''परमयज्ञ'', उपनिषदों में ''परमदीक्षा'', ''मनुस्मृति'' में ''परमतप'', ''योगदर्शन'' में ''परमयोग'' और महर्षि दयानंद ने ''परमधर्म'' कहा है।

स्वाध्याय का नियमित होना परमावश्यक पहलू है। इसके लिए सुदृढ़ संकल्प होना चाहिए। इसके बिना नियमितता नहीं हो पाती। इसका समय भी नियमित होना चाहिए ताकि कालांतर में यह आपके जीवन का अंग बन जाये। भोजन, शयन आदि की भाँति इसको भी समय पर करना आपको अनेक सुखद परिणाम देगा। वेद का वचन है–

स्वाध्यायन्न प्रमदितव्यम्

स्वाध्याय के विषय में कभी प्रमाद मत करो।

वस्तुतः स्वाध्याय के वास्तविक भाव का प्रतिपादन इस प्रकार किया जाता है–

1. सद्ग्रंथों का विश्लेषणात्मक अध्ययन।
2. भौतिकवादी सब वस्तुएँ अनित्य हैं, परन्तु जीवन गाड़ी खींचने के लिए परमावश्यक है। अतः इनका उपभोग तो करना चाहिए, परन्तु इनके प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिए।
3. स्वजनों का संबंध भी अनित्य है। अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए इनके प्रति सद्भावना, सहानुभूति रखनी चाहिए और यदि वे सुपात्र हों तो श्रद्धा एवं सामर्थ्य के अनुसार सहायता भी करनी चाहिए परन्तु इनके प्रति मोह माया नहीं रखनी चाहिए।
4. यहाँ तक कि हमारा अपना भौतिक शरीर भी अनित्य है। इसको चलाने के लिए उचित भोजन ही देना चाहिए, क्योंकि यह प्रभु का दिव्य मन्दिर है। इसलिए इसको विषयों में व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए।

ऐसे स्वाध्याय करने से ही वैराग्य का आविर्भाव होता है। अतः स्वाध्याय मानसिक उन्नति का सर्वोत्कृष्ट साधन है। जब हम अपने से अधिक विकसित अनुभवी विद्वानों के विचारों को मन में ग्रहण करते हैं तब उनसे मानसिक ज्ञान की वृद्धि होती है। जिसे ज्ञान प्राप्ति की आंतरिक आकांक्षा होती है, वह अपने बल से अपने परिश्रम से विद्वान् बन जाता है। इसी कारण स्वाध्याय रस ही एक ऐसा रस है जिसका पान करके व्यक्ति आत्मविभोर एवं आनंदित होता है। वस्तुतः यह एक अलौकिक रस है।

अब प्रश्न उठता है कि स्वाध्याय के शाब्दिक अर्थ क्या हैं? वस्तुतः इसके मुख्य दो अर्थ हैं, एक तो स्व+अध्याय अर्थात् आत्म-चिन्तन, एवं आत्म-निरीक्षण करना। विस्तृत अर्थों में इसका अभिप्राय यह है कि आत्मचिंतन द्वारा अपनी वृत्तियों का अध्ययन करना जिससे आसुरी वृत्तियों पर विजय एवं दैवी सम्पत्तियों का विकास हो। आत्मनिरीक्षण से पूर्व व्यक्ति अपने को गुणों का भण्डार और दूसरे को अवगुणों का आगार समझता है। इसके बाद अपने को अवगुणों का आगार और दूसरों को गुणों का भण्डार समझने लगता है। जैसे कि बहादुरशाह ज़फर ने लिखा है–

न थी हाल की जब हमें अपने खबर, रहे देखते औरों के ऐबों-ओ-हुनर।
पड़ी अपनी बुराइयों पे जो नज़र तो निगाह में कोई बुरा न रहा।।

कुछ लोगों का केवल दोष देखने का स्वभाव होता है उन्हें केवल दोषों से काम होता है न कि गुणों से जैसे–

भ्रमराः मधुमिच्छंति व्रणमिच्छंति मक्षिकाः।
सज्जनाः गुणमिच्छंति दोषमिच्छंति पामराः।।

भँवरे शहद की इच्छा करते हैं, मक्खियाँ घाव की इच्छा करती हैं। परन्तु सज्जन गुणों की इच्छा करते हैं, नीच लोग दोषों की इच्छा करते हैं एक अन्य कवि ने भी लिखा है–

भला बुरा न कोई रूप से कहाता है।
नज़र का भेद ही गुण-दोष सब दिखाता है।।
कोई देखता है कीचड़ में कमल की कली।
किसी को चाँद में भी दाग़ नज़र आता है।।

कबीर ने कहा–

बुरा जो मैं देखन चला बुरा न मिलया कोय ।

जब दिल खोजा आपना मुझ से बुरा न कोय । ।

दूसरे इसका अर्थ है आर्ष ग्रंथों का अध्ययन, मनन एवं आत्मसात् करना जिनमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं सदाचार का वर्णन हो । अतः आर्षग्रंथों के अंतर्गत वेद उपनिषद्, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रंथ आते हैं । ''शतपथब्राह्मण'' में भी लिखा है–

धन से भरी हुई पृथ्वी के दान से जितना पुण्य होता है वेदों के अध्ययन और आचरण से उससे भी अधिक सुख मिलता है ।

आत्मोद्धारक ज्ञान प्राप्त करने के जिज्ञासु व्यक्तियों को तो असत् साहित्य को हाथ भी न लगाना चाहिए । सच्ची बात तो यह है कि अयुक्त अवांछनीय व निम्न मनोरंजनार्थ किये गये लिपि लेखन का साहित्य कहा ही नहीं जाना चाहिए । यह तो साहित्य के नाम पर लिखा गया कूड़ा कर्कट होता है, जिसे समाज के हित अहित से मतलब न रखने वाले कुछ स्वार्थी 'लेखक' उसी प्रकार लिखकर धन कमाते हैं जिस प्रकार कोई भ्रष्टाचारी भोजन में अवांछनीय चीजें मिलाकर लाभ कमाते हैं ।

हम देखते हैं कि संसार में जितने भी महापुरुष, वैज्ञानिक, महर्षि आदि हुए हैं, वे सभी स्वाध्यायशील थे । स्वाध्याय का सत्साहित्य वेद, उपनिषद्, आदि आर्षग्रंथ एवं महापुरुषों के जीवन-वृतांतों का अध्ययन करना है । कुछ भी पढ़ा जाये का नाम स्वाध्याय नहीं है । जैसे मनोरंजन प्रधान नाटक, उपन्यास आदि पुस्तकों को पढ़ने का नाम स्वाध्याय नहीं है । इस प्रकार के साहित्य का अध्ययन करना तो समय का दुरुपयोग करना व आत्मा को गंदा करना है । अश्लील साहित्य को छूना भी पाप समझना चाहिए क्योंकि अध्ययन का तात्पर्य सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् साहित्य पढ़ने से है । सद्विचारों व सदुद्देश्य से पूर्ण साहित्य ही पढ़ने योग्य होता है । इसके विपरीत अनुपयुक्त साहित्य का पठन पाठन विचारों को इस सीमा तक दूषित कर देगा कि फिर उनका पूर्ण परित्याग एक विकट समस्या बनकर रह जायेगी ।

कुछ व्यक्तियों का विचार है कि विद्याध्ययन में समयाभाव व आर्थिक

परिस्थितियाँ मुख्य कारण होती हैं, परन्तु वास्तव में बात यह है कि ऐसे व्यक्तियों को विद्याध्ययन का न तो महत्त्व ही मालूम होता है और न उसकी रुचि ही होती है। अनेकों दृष्टान्तों से यह सिद्ध हो चुका है कि निर्धनता विद्याभ्यास में बाधक नहीं है। एपिक टेटस 90 वर्ष तक गुलाम रहा था। उसके मालिक ने उसका पैर तोड़ डाला था परन्तु इसके बाद भी उसने अपनी झोंपड़ी में बैठकर अच्छे ग्रंथों का स्वाध्याय करके उच्चकोटि का विद्वान् बन गया। यहाँ तक कि रोग में तत्कालीन सम्राट् आड़ियम भी उसके पांडित्य का लोहा मानते थे। इसी प्रकार पाइथागोरस रेखागणित शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित हुआ है, वह वन से लकड़ियाँ काटकर अपनी रोज़ी रोटी कमाता था। उत्तम पुस्तकें जीवन्त देवता हैं। अतः उनकी नियमित उपासना करें। पुस्तकें मन को एकाग्र एवं संयमित करने का सरलतम साधन हैं। अध्ययन करते-करते व्यक्ति समाधि अवस्था को भी प्राप्त कर सकता है। एक बार लोकमान्य तिलक का ऑपरेशन होना था। इसके लिए उन्हें कलोरोफार्म सुंघाकर बेहोश करना था। परन्तु इसके लिए उन्होंने डॉक्टर को मना कर दिया और कहा–

मुझे एक गीता की पुस्तक ला दो, मैं उसे पढ़ता रहूँगा और ऑपरेशन कर लेना।

कहते हैं कि गीता लाई गई। लोकमान्य तिलक उसके अध्ययन में ऐसे लीन हुए कि डॉक्टरों ने ऑपरेशन किया। तब तक वे तनिक हिले भी नहीं, न कोई दुःख अनुभव किया। पुस्तकों के अध्ययन से ऐसी तल्लीनता प्राप्त हो जाती है जैसी कि योग साधकों को। स्वाध्याय की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आचार्य श्रीराम शर्मा लिखते हैं–

पोथी पढ़ने का व्यस्न किसी की जानकारी को तो बढ़ा सकता है, पर उससे कोई आत्मिक लाभ नहीं हो सकता। व्यक्ति भले ही शास्त्र को थोड़ा पढ़ता हो, पर उसका चिन्तन करता रहे। शास्त्र के अर्थ पर, आदेश पर, मर्म पर, महत्व पर गंभीरता से मनन करना, अपनी आत्मा का अध्ययन करना, आत्ममंथन से जो नवनीत निकलता हो, उसे पचाकर आत्मसात् कर लेना,

यही स्वाध्याय का तथ्य है। जो इस प्रकार शास्त्र सेवा करता है, वही विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ है। —गायत्री महाविज्ञान पृष्ठ 178

आचार्य यास्क उपसर्गों का अर्थ लिखते हुए सु उपसर्ग का अर्थ करते हैं ''सु इत्यभिपूजितार्थे'' । इस प्रकार जिस किसी पद से पूर्व सु उपसर्ग जुड़ जाता है उस पद के अर्थ में पूजा, बुद्धि उत्पन्न कर देता है। सभी व्यक्ति उसे सम्मान की दृष्टि से देखने लगते हैं। अतः स्वाध्याय का भी यही अर्थ है। ऐसा अध्ययन जो सर्वत्र पूजनीय हो। 'सु' के पश्चात् आड़ उपसर्ग भाव है समन्तात् सब ओर से पढ़ ली अर्थात् सद्ग्रंथ का ऐसा अध्ययन जिसमें उसका कोई भी भाग न छूटे। प्रायः देखा जाता है कि व्यक्ति ने पूरी पुस्तक तो पढ़ ली परन्तु उसे उसके लेखक के नाम का पता नहीं। इसी प्रकार किसी व्यक्ति ने पुस्तक तो सारी पढ़ ली परन्तु उसकी भूमिका नहीं पढ़ी। यह अध्ययन तो है परन्तु स्वाध्याय नहीं है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम अध्ययन कैसे करें। हमें चाहिये कि मन की इस भाग दौड़ और भंवरवृत्ति से छुटकारा प्राप्त करें। किसी पुस्तक से स्थायी लाभ प्राप्त करने के लिये हमें चाहिये कि पुस्तक को धीरे-धीरे शांतिपूर्वक पढ़ें। कुछ पढ़ने के पश्चात् रुकें तथा अपने आप से प्रश्न करते रहें—हमने अभी तक क्या पढ़ा है? यदि मन पर नये संस्कार नहीं पड़े हैं तथा स्मृति ने कुछ ग्रहण नहीं किया है तो हमें पुनः उस भाग को पढ़ना चाहिये, यहाँ तक कि नये संस्कार जटिलता से अंकित हो जायें। अध्ययन करते समय विशेषतः अधोलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये।

1. मनन— इसका भावार्थ है कि पढ़ी हुई बात का पुनः पुनः स्मरण, चिन्तन और विचार करना, जिससे कि वह मन में बैठ सकें और भुलाई न जा सके। पढ़ी हुई बात पर जितना चिन्तन किया जायेगा, वह उतनी ही अधिक स्मृति में अच्छी प्रकार बस जायेगी।

2. पूर्व-पर्यवेक्षण—जो कुछ आप पहले पढ़ चुके हैं, उसे नये ज्ञान से संयुक्त करना, उसे न भूलना अपितु नये विचार से उसका मिलान करना।

यदि पिछला भूलते जाये और आगे पढ़ते जायें तो कोई लाभ नहीं है। अध्ययन का संबंध विचार से है यहाँ तक कि यूनानी तत्त्वज्ञानी डीमा क्रोटांस ने अपने नेत्र इसलिये निकलवा दिये थे ताकि व्यर्थ काग़ज़ पर नेत्र दौड़ाने के स्थान पर मनन एवं चिन्तन कर सकें। अतः यह कहना तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी कि पुनः पुनः स्मृति में संगृहीत ज्ञान की आवृति करने से ज्ञान दृढ़ होता है और संस्कार परिपुष्ट होते हैं।

3. ध्यानावस्थिति—जितना अधिक आपका ध्यान विषय में लगा रहेगा, उतना ही मन नये ज्ञान को ग्रहण करेगा। अतः ध्यान को अधिक से अधिक लगाये रखने से ही नया ज्ञान अंतस्थल में अंकित होता है। बहुधा लोगों की आँखें तो पुस्तक पर रहती है परन्तु मन कहीं अन्यत्र चक्कर लगाता रहता है।

4. स्मृति को दृढ़ बनाना—स्मृति को दृढ़ करने के लिए नोट और पुस्तक पर कठिन एवं उपयोगी स्थलों पर निशान, लगाने की आदत डालनी चाहिए। जिस पुस्तक को आप पचाना चाहते हैं, उसे नित्य अपने सामने मेज पर रखिये, निरंतर मन पर संस्कार डालते रहिये। किसी बात को स्मरण करने की रीति उसे पुनः पुनः दोहराना है। दुहराने से संस्कार दृढ़ होते हैं। बार-बार पढ़ने से पुस्तकों के अंश याद हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों विवेक, बुद्धि का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों दुहराने की क्रिया की कम आवश्यकता होती जाती है। इसके अतिरिक्त एक उत्तम उपाय यह है कि थोड़ा-थोड़ा करके पाठ कई दिनों में याद किया जाये और उसी विषय को थोड़ा-थोड़ा नियमित समय के पश्चात् दोहराया जाये।

5. शब्द भण्डार की वृद्धि—शब्दकोष की वृद्धि से ज्ञान वृद्धि होती है। वे विद्यार्थी कुछ ग्रहण नहीं कर पाते जो आलस्यवश कठिन शब्दों को छोड़ते हुए चले जाते हैं। परिचित शब्दों के अर्थों की कमी के कारण न तो उन्हें पढ़ने में रस आता है, न ज्ञान वृद्धि ही होती है। वे कठिन पुस्तकें नहीं पढ़ सकते, कभी-कभी अर्थ भी समझ में नहीं आता। इनसे बचने के लिए निरंतर अपना शब्द भण्डार और मुहावरों की जानकारी को बढ़ाते रहना चाहिये।

6. योजना बनाकर पढ़ना—हमें एक सुयोग्य विद्यार्थी की भाँति योजना बनाकर वैसे ही अध्ययन करना चाहिये जैसे एक विद्यार्थी अपने विभिन्न विषयों की समय-सारिणी बनाकर अध्ययन करता है। प्रायः यह देखा जाता है कि जिस विषय में विद्यार्थी की विशेष रुचि होती है वह उस विषय पर ही विशेष समय लगाता है। परन्तु यह अध्ययन का ढंग उचित नहीं है। अपितु जो विषय विद्यार्थी को कम आता है उसका अध्ययन अधिक करना चाहिए ताकि उसमें भी अच्छे अंक प्राप्त कर सकें। इस प्रकार हम भी जिस विषय में कम रुचि हो वह अधिक पढ़ना चाहिए ताकि हम विभिन्न विषयों में दक्षता प्राप्त कर सकें। हमें अपने से अनुभवी व्यक्ति और संत-महात्माओं से पूछना चाहिये कि कौन-कौन से ग्रंथ हमारे जीवन में अधिक उपयोगी हैं। पुस्तकों का चयन बड़ी सावधानी से करना चाहिये। क्या प्रत्येक ग्रंथ का अध्ययन नहीं करना चाहिये? सर्वथा नहीं। जब तक अध्ययन में आर्ष ग्रंथ सम्मिलित न हो तब तक वह स्वाध्याय नहीं है।

स्वाध्याय के लाभ

स्वाध्याय जीवन सार है, लाये नया निखार।
हर प्रकार की उन्नति का है यही आधार।।
इसी से पाया जा सके, चिन्ताओं पर पार।
केवल यही करा सके, सब सपने साकार।।
इसी के द्वारा हो सके, इन्द्रियों पर अधिकार।
इसी के द्वारा हो सके, प्रभु का साक्षात्कार।।
जीवन सुखी बनाने का, है ये ही आधार।
ख्याति इसी से फैलती, सात समुन्दर पार।।
आपस से हर एक से, यही सिखाये प्यार।
इसी के द्वारा मिल सके, जन जन से सत्कार।।
इसी के द्वारा आता है, करना शुद्ध आहार।
धर्म से धन कमायें सभी, करें धर्म प्रचार।
इसी से सम्भव हो सके, सुखी सफल संसार।।

जीना इसी का नाम है, कहें सब शास्त्रकार ।
इसी के द्वारा लग सके, नाव भंवर से पार ।।

मानव जीवन में स्वाध्याय के असंख्य लाभ हैं । स्वाध्यायशील व्यक्ति एक नये संसार का प्रादुर्भाव करता है । उसमें आत्मज्ञान की भावना का उदय होता और वह लोकोपकार के कार्य करने लग जाता है । स्वाध्याय के मुख्य-मुख्य लाभों का उल्लेख इस प्रकार किया जाता है–

1. युक्तमना भवति – साधारण व्यक्ति की सबसे बड़ी समस्या यह है कि उसका मन एकाग्र नहीं हो पाता । यदि मन किसी प्रकार काबू में आ जाये तो सारे कार्य सिद्ध हो जायें । परन्तु स्वाध्याय से व्यक्ति का चंचल मन इसमें युक्त हो जाता है । उस व्यक्ति को गीता में स्थितप्रज्ञ के नाम से पुकारा गया है । परन्तु जब तक व्यक्ति मन को अच्छे काम में युक्त नहीं करता तब तक यही भय रहेगा कि कहीं यह मन पुनः बुराई में न लग जाये । जो व्यक्ति युक्तमना नहीं उसका योग कभी सिद्ध नहीं हो सकता । वस्तुतः प्रत्येक बात में युक्त होना ही योग है और ऐसा व्यक्ति ही योगी है । अतः स्वाध्याय का कोई अन्य फल मिले या न मिले, मन को युक्त करने का अभ्यास तो होता ही है ।

2. अपराधीन भवति–स्वाध्याय करने से मानव पराधीन नहीं रहता अपितु वह स्वाधीन हो जाता है । वह इन्द्रियों के रूप, रस, गंधादि विषयों के हाथों का खिलौना नहीं रहता प्रत्युत उन्हें वह अपनी इच्छा से चलाता है । प्रकृति उसके हाथ का खिलौना होती है–पृथ्वी, जल, तेज वायु आदि जड़ शक्तियाँ उसका लोहा मानती हैं । उसे यह ज्ञान हो जाता है कि मैं अमर आत्मा हूँ, तो मृत्यु भी भयभीत होकर हाथ जोड़े उसके सामने खड़ी रहती है । वह जान लेता है कि परवश होना दुःख है और आत्मवश होना सुख है ।

3. अहरहरथनि साध्यते–साधारण व्यक्ति हर बात में सौदेबाजी करता है । लाभों में भी पैसे के लाभ को ही सच्चा लाभ मानता है । वह कहता है कि जिसमें दो पैसों का लाभ न हुआ, वह भी कोई सौदा है ? ऐसे व्यक्ति के लिए भी इसमें गुंजाइश है कि स्वाध्यायशील व्यक्ति को भौतिक एवं आध्यात्मिक

अर्थ लाभ होता है । यहाँ तक कि उसका विवेक इतना बढ़ जाता है कि वह शब्द की गहराई में जाकर उसके अर्थ को निकाल लाता है जिसकी सामान्य व्यक्ति कल्पना भी नहीं कर सकता । जैसे उसको वेद में प्रयुक्त 'गौ' शब्द केवल साधारण पशु मात्र का वाचक न दीखकर वाणी, किरण, पृथ्वी आदि का वाचक प्रतीत होता है ।

4. सुख स्वपितिः – वह चैन की नींद सोता है । संसार में अनेकों सुख हैं परन्तु नींद से बढ़कर अन्य सांसारिक सुख कोई भी नहीं है । हमने कई सम्पतिशील व्यक्ति पैसा बहाते देखे हैं कि हमें निद्रा की औषधि दे दो । यहाँ तक कि वे इस निद्रा के लिये सोने की अशर्फियाँ लुटाते देखे हैं परन्तु उनके भाग्य में नींद कहाँ । उनके पास सोना है पर निद्रा नहीं जबकि स्वाध्यायशील व्यक्ति को यह लाभ प्राप्त होता है क्योंकि वह उन रोगों के कारण को जानकर उनसे हटकर सुख की नींद सो जाता है ।

5. परचिकित्सक आत्मनो भवति–स्वाध्यायी, परमचिकित्सक बन जाता है । उसे चिकित्सा सिद्ध हो जाती है । वह अन्यों की चिकित्सा ही नहीं करता अपितु अपने आप की चिकित्सा करना जान जाता है । उसे अपने रोगों को झटककर परे हटा देने का अभ्यास हो जाता है । उसे किसी डॉक्टर के पास जाने की आवश्यकता नहीं होती है ।

6. इन्द्रिय संयम भवित–ऐसा व्यक्ति आत्मज्ञानी हो जाने पर अपनी इन्द्रियों पर काबू पा लेता है । वह उनका दास नहीं रहता अपितु वह इन्द्रियों का स्वामी बन जाता है ।

7. एकरामता भवति–उसे एकरामता प्राप्त होती है । उसे अद्‌भुत एवं अद्वितीय सुख एवं आराम उपलब्ध होता है । जिसकी उपमा न हो जिसका सानी ढूँढे न मिल सके, ऐसे आराम को एकरामता के नाम से अभिहित किया जाता है ।

8. प्रज्ञा बुद्धिर्भवति–उसे त्रैकालिकी बुद्धि प्राप्त हो जाती है और इस विद्या का नाम प्रज्ञा है । इसके सिद्ध हो जाने से सभी सिद्धियाँ स्वयं आ जाती हैं ।

9. ब्रह्मणयम—उस व्यक्ति को ब्रह्मभाव पैदा हो जाता है। इससे वह व्यक्ति शूद्रत्व से निकलकर ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है। उसे अग्रता प्राप्त होती है। वह मुखवत् सर्वत्र मुखिया माना जाता है।

10. तिरूपचर्याम्—वह जो भी आचरण अपनाता है, उसमें वह प्रतिमूर्त हो जाता है। वह प्रतिकृति धन बन जाता है। लोगों के लिए उदाहरण बन जाता है। अन्य व्यक्ति अपना आचरण सुधारने के लिए कहीं उदाहरण ढूँढ़ना चाहते हैं। तो स्वाध्यायशील पड़ोसी में वे गुण साक्षात् मूर्तिमान दृष्टिगोचर होते हैं।

11. यश—स्वाध्याय से यश प्राप्ति होती है। वस्तुतः जिसका नाम एवं कीर्ति है, वह ही जीवित एवं अमर है।

12. लोकोपिक्ति—वह दिव्यद्रष्टा एवं भविष्यवक्ता बन जाता है। उसके पास स्वभावतः लोगों का आना जाना बना रहता है। लोग उसके शिष्य बन जाते हैं। इस प्रकार प्रसंगात उसका लोक संग्रह सिद्ध हो जाता है।

13. अर्चाबुद्धि—उसमें अर्चाबुद्धि का प्रादुर्भाव हो जाता है और लोग उसकी महापुरुष की भाँति पूजा ओर यथायोग्य सत्कार करने लग जाते हैं।

14. दानशीलता – उसे सब प्रकार की सामग्रियाँ—भोजन, फल, वस्त्र, स्वाध्याय के लिये पुस्तकें आदि—स्वयं भक्तलोग ही प्रदान कर देते हैं। उसे किसी से माँगने की आवश्यकता नहीं पड़ती सब कुछ उसे दान द्वारा स्वयं मिल जाता है।

15. अजेयतया च ब्रह्मण भुनक्ति—भक्त जन उसकी सेवा में भेटें समर्पित करते हैं और इसी भावना से उसके पास आते हैं कि वह अजेय हैं।

16. अहिंसार्थता : सब व्यक्ति यह मानते हैं कि उसकी रक्षा में ही ज्ञान की रक्षा है इसलिए यह रक्षणीय है। वह सभी का रक्षणीय हो जाता है और उसे निर्भयता प्राप्त हो जाती है।

निष्कर्ष – इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि स्वाध्याय जीवन में परमावश्यक है। इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

स्वाध्यायशील पुरुष एकाग्र मन हो जाता है, पराधीन नहीं होता है, दिन-प्रतिदिन अपने प्रयोजनों को साधता है अपने आपका परम चिकित्सक बन जाता है। इन्द्रियों का संयम, सदा एक रस रहना, ज्ञान की वृद्धि, यश और लोगों को सुधारने और निपुण करने का काम यह सब फल स्वाध्याय और प्रवचन करने वाले को मिलते हैं। —11.5.7.1

स्वाध्याय की महिमा पर प्रकाश डालते हुए कवि वृंद ने सत्य ही लिखा है—

सरस्वती के भण्डार की बड़ी अपूर्व बात।
ज्यों-ज्यों खर्चे त्यों-त्यों बढ़े बिन खर्चे घटि जात।।

स्वाध्याय का स्वाद—

स्वाध्याय से आने लगा मानव को स्वाद
कुछ बातों को जाने बिना खड़े हो गए विवाद
किसी ने स्वाध्याय ऐसा किया करने लगा जिहाद
कोई अश्लील स्वाध्याय कर हो गया बरबाद
किस का स्वाध्याय करें यह नहीं है पहचान
आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय को ही स्वाध्याय जान

—लालचन्द चौहान

5. सत्संग

सुत, दारा अरु लच्छमी, पापी के भी होय ।
संत समागम हरि भगति दुर्लभ जग में दोय ।।

पुत्र, स्त्री और धन तो पापी के घर में भी होते हैं । परन्तु सत्संग एवं प्रभुकथा ये दोनों ही अत्यंत दुर्लभ हैं और ये मानव को बड़े भाग्य से मिलती है । सत्संग का अर्थ क्या है ? सत् पुरुषों जिनको आप्त पुरुष कहते हैं, उनके साथ बैठकर विचार-विमर्श करना एवं उनके सत्य उपदेश सुनना और उन पर आचरण करना, बिना आचरण के तो उनका संग भी सत्संग नहीं बन पायेगा ।

सत्संग का मानव जीवन में अत्यधिक महत्व है, क्योंकि उसके उत्थान एवं पतन का मुख्य कारण ही संग होता है । संग के अनुसार ही उसका मन बनता है और मन के अनुसार ही क्रिया होती है एवं क्रिया के अनुसार उसका फल मिलता है । सत्संग उन्नति के शिखर पर चढ़ा देता है, और कुसंग अवनति के गर्त में गिरा देता है एक तुच्छ कीट भी फूल के संग से बड़े-बड़े राजा महाराजाओं के सिर पर पहुँच जाता है, काँच भी स्वर्ण के संग से सूर्य की भाँति चमकने लगता है, मूर्ख भी पंडित के संग से विद्वान् बन जाता है । अतः लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

जैसा संग वैसा रंग, जैसा पानी वैसी वाणी ।
जैसा अन्न वैसा मन, जैसा ख़्याल वैसा व्यवहार ।।
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, जैसी करनी वैसी भरनी ।।

यदि संत सेवति यद्य संत तपस्विन् यदि वास्तेन मेव ।।
वासो यथा रंग वंश प्रयाति तथा स तेषां वशमम्दुपैति ।।

—महाभारत (शांतिपर्व)

कपड़े जैसे रंग में रंगे जायें वे वैसे ही हो जाते हैं । जो व्यक्ति संत, असंत, तपस्वी, चोर या जैसा संग करता है वह वैसा ही हो जाता है । अतः मानव योगी के संग से योगी, भोगी के संग से भोगी और रोगी के संग से रोगी हो जाता है । संस्कृत के एक कवि के शब्दों में—

चन्दन शीतल लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः ।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसंगति ।।
सत्संगः परमतीर्थ सत्संगः परमंपदम् ।
तस्मात्वसर्व परित्यज्य सत्संग सततं कुरु ।।

लोक में चन्दन शीतल माना गया है और चन्दन से भी शीतल चन्द्रमा । परन्तु साधु संगति चांद और चंदन से भी शीतल होती है । सत्संग ही परम आनन्द है, सत्संग ही परमपद मोक्ष का साधन है, इसलिये सारे दुर्व्यसनों को त्यागकर सत्संग कीजिये । जैसे मुनि तरुण सागर लिखते हैं–

बुजुर्गों की संगति करो । क्योंकि बुजुर्गों के चेहरे की एक-एक झुरी पर हज़ार-हज़ार अनुभव लिखे हैं । उनके कांपते हुए हाथ, हिलती हुई गर्दन, लड़खड़ाते हुए कदम और मुरझाया चेहरा संदेश देता है कि जो भी शुभ करना है वह आज अभी और इसी वक्त कर लो । कल कुछ नहीं कर पाओगे । बूढ़ा इन्सान इस पृथ्वी का सबसे बड़ा शिक्षालय है क्योंकि उसे देखकर उगते सूरज की डूबती कहानी का बोध होता है । –कड़वे प्रवचन भाग 1 पृ० 13

मानव जीवन निर्माण अधोलिखित तत्वों से होता है ।

(1) पूर्व जन्म के संस्कार, (2) वंशानुगत प्रभाव, (3) संस्कार, (4) स्कूल, (5) सत्संग, (6) धन, (7) अन्न, (8) दृश्य, (9) जलवायु ।

वस्तुतः सत्संग की व्युत्पत्ति दो शब्दों से हुई है–सत्+संग अर्थात् सत्संग का शाब्दिक अर्थ हुआ सत् का साथ । सत् का अर्थ है 'नित्य' जिसका संसार में सदा अस्तित्व रहे । वही सत् है और वह है परमात्मा । अतः सत्संग का अर्थ हुआ परमात्मा का संग जो पंडितों के पास बैठकर हज़ारों व्यक्ति सुनते हैं कथा होती है न कि सत्संग जैसे रामायणकथा, भागवतकथा आदि । जहाँ पर सत्संग होता है वहाँ पर भक्ति और उसके दो पुत्र ज्ञान एवं वैराग्य स्वतः आ जाते हैं । जो केवल भोजन, भोग, भय और नींद तक ही सीमित रहता है वह नर पशु है परन्तु जो व्यक्ति स्वाध्याय, सत्संग, सिमरण, सेवा आदि करता है वही वस्तुतः मानव है उसे ही सच्चा सुख, शांति एवं आनंद मिलता है । जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

सेवा, संयम, साधना, सत्संग और स्वाध्याय ।
दुःख में सुख में पायेगा जो इनको अपनायेगा ।।

इस प्रकार के सत्संग का भाव है कि प्रभु की स्तुति, प्रार्थना उपासना करना । प्रभु भक्ति के फल के विषय में महर्षि दयानंद जी लिखते हैं–

जैसे शीत से आतुर पुरुष का, अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं । इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए ।

सत्संग तो एकाग्रचित होकर सांसारिक साधनों से विमुख होकर प्रभुभक्ति में लीन होने का नाम हैं जिसमें अराध्य के बिना और कुछ भी दिखाई नहीं देता । जिस प्रकार हनुमान सत्संग में ऐसे लीन हो जाते थे कि उन्हें श्री राम के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता था । परमात्मा सर्वव्यापक है परन्तु वह केवल ज्ञान, श्रद्धा और प्रेम से ही जाना जाता है । इससे सिद्ध होता है, कि प्रभु केवल प्रेम से मिलते हैं, और ऐसा प्रेम सत्संग से ही प्राप्त होता है । परन्तु प्रभु-प्रेम की यह गुप्त बात कोई व्यक्ति वाणी से नहीं कह सकता और जिसको यह बात ज्ञान द्वारा प्राप्त हो जाये वह अपने लिये डुग-डुग्गी नहीं पिटवाता कि मैं ऐसा अनुभव करता हूँ । जो व्यक्ति ऐसा कहता है वह केवल अपनी प्रतिष्ठा के लिए स्वयं और संसार को धोखा देता है । ऐसा कहना प्रभु-भक्ति पर कलंक लगाना है । परन्तु इस विषय में यह कहने पर तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी कि आज व्यक्ति भौतिक सुख-सुविधाओं के जाल में फँसकर प्रभु-प्रेम को भूल बैठा है । जैसे पंडित प्रकाश चंद्र कविरत्न लिखते हैं–

कोई पूछता है तनख़्वाह कितनी है,
कोई पूछता है बैंकों में रुपया कितना जमाया है ।
कोई पूछता है लाला शादी में तुम्हारी,
ससुराल से भी कितना नक़द माल आया है ।

कोई पूछता है बड़े साहब के बंगले पे ।
डाली भेज, क्या ख़िताब पाया, क्या इनाम पाया है ।
सब कुछ पूछते 'प्रकाश' ये न पूछे कोई ।
धर्म-धन प्रभु-प्रेम कितना कमाया है ।

दूसरी प्रकार का सत्संग ज्ञानी, महात्माओं एवं महापुरुषों का है । परन्तु इनका संग भी बड़े ही भाग्य से मिलता है। जैसे तुलसीदास ''रामचरितमानस'' के आरण्यकांड में कहते हैं–

प्रथम भक्ति संतन्ह कर संगा ।

प्रथम प्रकार की भक्ति संतों और महात्माओं का सत्संग ही है । वस्तुतः तुलसीदास ने ''रामचरितमानस'' में नवधा भक्ति का उल्लेख शबरी को सुनाया और इसका शुभारम्भ संतों के सत्संग से किया । संतों में उत्तमगुण, आचरण एवं भाव होते हैं उनका ज्ञान भी उच्चकोटि का होता है । वे दिव्य ज्ञान की एक विलक्षण ज्योति होते हैं । वह दिव्य ज्ञान ज्योति सारे पापों को भस्म कर देती है । अतः साधु संगति से जब मनुष्य का अंतःकरण पवित्र हो जाता है तो उसकी मित्रता धन से नहीं अपितु परमेश्वर से हो जाती है क्योंकि मलिन मन से परमेश्वर के साथ मित्रता नहीं हो सकती जैसे कबीर ने लिखा है–

कबिरा मन निरमलु भइया जैसे गंगा नीर ।
पाछै लागौ हरि फिरै कहत कबीर कबीर । ।

–श्री गुरु ग्रंथ साहिब पृ.1367

यदि साधारण व्यक्ति बोलता है तो वह वार्तालाप बन जाता है । यदि प्रोफैसर बोलता हे तो लैक्चर बन जाता है । यदि कोई नेता बोलता है तो भाषण बन जाता है । यदि कोई पंडित धनोपार्जन के लिये बोलता है तो वह कथा बन जाती है । परन्तु यदि सच्चा संत बोलता है तो वह सत्संग कहलाता है । जिन्होंने प्रभु-प्रेम के सामने मुक्ति को भी तुच्छ समझा है, ऐसे संतों का संसार में सर्वथा अभाव नहीं है, परन्तु इनका मिलाप आसान नहीं है । जिस

प्रकार जंगलों में शेरों के झुण्ड नहीं होते, हंसों की कतारें होती हैं और लालों की बोरियाँ नहीं होती हैं। इसी प्रकार संतों की भी जमात नहीं होती। हम देखते हैं कि महर्षि दयानंद मृत्यु शैय्या पर विराजमान थे तब उनके पास पं० गुरुदत्त विद्यार्थी गये। वे पहले ईश्वर में विश्वास नहीं रखते थे, परन्तु महर्षि की अंतिम लीला देखकर सदा के लिए प्रभुभक्त और आर्य समाज के दीवाने बन गये। इसे कहते हैं सत्संगति का प्रभाव। इसी प्रकार महर्षि दयानंद जी को अमीचंद ने एक भजन सुनाया और यह सुनकर ऋषि अत्यंत प्रसन्न हुये और कहा–

अमींचंद तुम हो तो हीरे परन्तु कीचड़ में पड़े हो।

महर्षि दयानंद जी की अद्‌भुत वाणी का अमीचंद पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि शराबी, कबाबी और वैश्यानुगामी अमीचंद सब पापों को छोड़कर सच्चा ऋषि भक्त बन गया और उन्होंने अपना सारा जीवन आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में लगा दिया। याद रखो! कुसंग का संस्कार सत्संग से, माता-पिता के रज-वीर्य का संस्कार तपस्या से और पूर्व जन्म का संस्कार तत्त्व ज्ञान द्वारा ही नष्ट होता है। तुलसीदास संतों के उपकारों की महिमा पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–

तुलसी संत सु-अंब-तरू फूलि फलहिं पर हेतु।
ये जितने पाहन हनैं वे उतते फल देतु।।

संतों का जीवन मीठे आम के वृक्षों की भाँति होता है। जोकि दूसरे लोगों के कल्याण के लिए ही फलता फूलता है। लोग जितने आमों के वृक्ष पर पत्थर मारते हैं वे उतना ही लोगों को फल-फूल देते हैं। संतों का जीवन मानवता के कल्याण के लिये ही होता है। इसी प्रकार संतों की महिमा के विषय में तुलसीदास जी ने कितना सुन्दर लिखा है–

तुलसी इस संसार में पाँच रत्न है सार।
साधु मिलन और हरि भजन, दया, धर्म, उपकार।।

सत्संग के अद्‌भुत प्रभाव के विषय में एक शिक्षाप्रद कहानी इस प्रकार

है– एक नगर में बूढ़ा चोर रहता था । उसके साथ उसका 16 वर्षीय लड़का भी रहता था । चोर जब काफी बूढ़ा हो गया तो वह अपने पुत्र को चोरी की विद्या सिखाने लगा । कुछ ही समय के बाद उसका पुत्र चोरी करने में निपुण हो गया । उसने इतनी निपुणता प्राप्त कर ली थी कि ऐसे-ऐसे स्थान पर सेंध मार देता था जहाँ से चोरी होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । दोनों बाप-बेटा आराम से जीवन व्यतीत करने लगे ।

एक दिन चोर ने अपने बेटे से कहा–''देखो बेटा, संतों की बात कभी नहीं सुननी चाहिये । अगर कहीं कोई संत उपदेश देता हो तो अपने कान को रुई से बंद करके वहाँ से भाग जाना चाहिये ।''

बेटे ने उत्तर दिया–हाँ बापू, समझ गया ।''

एक दिन लड़के ने सोचा क्यों न आज राजा के घर पर ही हाथ साफ कर दें । ऐसा सोचकर उधर ही चल पड़ा । थोड़ी दूर जाने के बाद उसने देखा कि मार्ग में कुछ व्यक्ति एकत्र होकर खड़े हैं और कुछ बैठे हैं । उसने एक आते हुए व्यक्ति से पूछा– उस स्थान पर इतने लोग क्यों एकत्र हुए हैं ?

उस आदमी ने उत्तर दिया–वहाँ एक महात्मा उपदेश दे रहे हैं । यह सुनकर उसका माथा ठनका । अपने को संभालते हुए वह बोला–''इसका उपदेश नहीं सुनूँगा ।'' ऐसा सोचकर अपने कान रुईं से बंद करके वह वहाँ से चल पड़ा । जैसे ही भीड़ के निकट पहुँचा एक पत्थर से ठोकर लगी और वह गिर पड़ा । कान से रुई दूर गिर गई । उस समय महात्मा जी उपदेश दे रहे थे–

''कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए, जिसका नमक खाये उसका कभी बुरा नहीं सोचना चाहिये । ऐसा करने वाले को भगवान् सदा सुखी बनाये रखते हैं ।''

ये दो बातें उसके कानों में पड़ गई । वह झटपट उठा और कान बंद कर राजमहल की ओर भाग चला । वहाँ पहुँच कर जैसे ही अंदर जाना चाहा कि उसे वहाँ बैठे पहरेदार ने टोका–''ओ कहाँ जाते हो तुम कौन हो ?

उसे महात्मा का उपदेश याद आया, ''झूठ नहीं बोलना चाहिये । ऐसा

करने वाले को भगवान् सुखी बनाये रखते हैं ।'' चोर ने सोचा आज सच ही बोलकर देखूं । उसने उत्तर दिया ''मैं चोर हूँ, चोरी करने जा रहा हूँ ।''

''अच्छा, जाओ ! उसने सोचा कि राजमहल का नौकर होगा । मज़ाक कर रहा है । चोर सच बोलकर राजमहल में प्रवेश कर गया । एक कमरे में घुसा तो वहाँ पर धन व जेवर का ढेर देखकर बहुत खुश हुआ । एक थैले में सब धन भर लिया और दूसरे कमरे में घुसा । वहाँ रसोई घर था । वहाँ पर विभिन्न प्रकार का भोजन रखा था । वह भोजन खाने लगा । भोजन करने के पश्चात् थैला उठाकर चलने लगा कि तभी फिर महात्मा का उपदेश याद आया ।

''जिसका नमक खाओ उसका बुरा मत सोचो । उसने अपने मन में सोचा—मैंने जो ''खाना, खाया उसमें नमक भी था । इसलिऐ बुरा नहीं सोचना चाहिए । इतना सोचकर थैला वहीं पर रख दिया और वापस लौट आया । फिर पहरेदार ने पूछा—''तुम चोरी करने गये थे ? क्या हुआ चोरी क्यों नहीं की ।''

चोर ने उत्तर दिया—देखिये ! जिसका नमक खाया हो उसका बुरा नहीं सोचना चाहिये । मैंने राजा का नमक खाया है इसलिये चोरी का माल नहीं लाया । वहीं रसोई घर में छोड़ आया । इतना कह कर चल पड़ा । उधर रसोईए ने शोर मचाया—पकड़ो-पकड़ो चोर भागा जा रहा है ।'' पहरेदार ने चोर को लपककर पकड़ लिया । उसे दरबार में पेश किया गया ।

राजा के पूछने पर उसने बताया कि एक महात्मा के द्वारा दिये गये उपदेश के अनुसार, मैंने पहरेदार के पूछने पर अपने को चोर बताया, क्योंकि मैं चोरी करने की इच्छा से आया था । आपका धन चुराया परन्तु आप का खाना भी खाया जिसमें नमक मिला था । इसलिये आपके प्रति बुरा व्यवहार नहीं किया और धन छोड़कर भागा । उसके उत्तर पर राजा बहुत खुश हुये और उसे अपने दरबार में नौकरी दे दी । वह दो चार दिन घर नहीं गया तो उसके बाप को चिंता हुई कि बेटा कहीं पकड़ लिया गया, परन्तु चार दिन के बाद लड़का घर आया तो बूढ़ा हैरान रह गया । लड़का बोला—''बापू जी आप

कहते थे कि किसी साधु की बात मत सुनना ।'' परन्तु मैंने एक साधु की दो बातों को ही सुना और उसके अनुसार कार्य किया तो देखिये सच्चाई का फल, मुझे राजमहल में अच्छी नौकरी मिल गई । बूढ़ा बेटे की बात सुनकर लज्जित हो गया । एक कवि ने सत्य ही लिखा है–

लोह नाव के संग से जल में तरे दिन रात ।
संतन के सत्संग से पापी जन तर जात । ।

तीसरी प्रकार का सत्संग सच्चे भक्तों, जीवन मुक्त पुरुषों गुणातीतों एवं वीतरागियों का सत्संग हैं हम पढ़ते हैं कि महर्षि उद्दालक के सत्संग से श्वेतकेतु को ब्रह्मज्ञान हो गया । महर्षि याज्ञवल्क्य के उपदेश से मैत्रेयी को ब्रह्मज्ञान हो गया । अधिकांश व्यक्ति सांसारिक भोगों एवं संग्रहों में ही अपना अधिकतर जीवन व्यतीत कर देते हैं । इस कारण मानव समाज साधारणतः आहार, निद्रा, मैथुन, भय आदि पशु वृत्तियों में ही व्यस्त रहता है । प्रभु के दिव्य ज्ञान में प्रायः अधिकांश व्यक्तियों की रुचि ही नहीं है । इसी कारण श्रीकृष्ण जी ने गीता में कहा है–

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धातां कश्चिन्मांवेति तत्त्वतः । । गीता 7.3

हज़ारों व्यक्तियों में कोई ही व्यक्ति मेरी तरह ईश्वर प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है और उन कोटि सिद्ध पुरुषों एवं योगियों में से भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मुझे यथार्थ मर्म से जानता है । हम देखते हैं कि सच्ची भक्ति के संग से ही मानव में परमात्मा, आत्मा आदि विषयों को जानने की उत्कट इच्छा का प्रादुर्भाव होता है । भागवत पुराण में भी लिखा है–

दुर्लभो मानुषो देहो देहिना क्षणभंगुरः ।
तत्रापित दुर्लभः मन्ये वैकुण्डप्रिय दर्शनम् । ।

मानव के लिये मानव शरीर प्राप्त होना कठिन है । यदि प्राप्त हो भी जाये तो यह क्षणभंगुर है । ऐसे अनिश्चित, जीवन में भक्तों का दर्शन अति दुर्लभ है । इसके विषय में कवि रत्न ''देशराज'' कृत ''सत्संगमहिमा''

कविता इस प्रकार है–

सत्संग की गंगा बहती है, नहाता क्यों नहीं ?
भाग्य तेरा सो रहा, उसको जगाता क्यों नहीं ?
देख कितने पवित्र जीवन, धुलके कुंदन हो गये ।
लक्ष्य उनको अपने जीवन का बनाता क्यों नहीं ?
पाप की नगरी में बसकर, सह रहा संकट है क्यों ?
धर्म की दुनियाँ बसा, आनंद पाता क्यों नहीं ?
है भरी ससांर में तेरे लिये, सुख-सम्पदा ।
फिर यथोचित लाभ इसका तू उठाता क्यों नहीं ?
देख अमृत पुत्र है तू भगवान् को भूला हुआ ।
समझकर कर्त्तव्य को, बिगड़ी बनाता क्यों नहीं ?

चौथी प्रकार का सत्संग आर्ष ग्रंथों एवं सत् शास्त्रों का स्वाध्याय है । स्वाध्याय के मुख्यतः दो अर्थ हैं । स्व+अध्याय अर्थात् एक तो आत्म चिन्तन और दूसरे आर्षग्रंथों का अध्ययन, मनन और आत्मसात् करना जिनमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं सदाचार का उल्लेख हो । अतः आर्ष ग्रंथों के अंतर्गत वेद, उपनिषद्, गीता, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदिग्रंथ आते हैं । स्वामी सत्यानंद जी ने भी सत्य ही लिखा है–

स्वाध्याय और सत्संग हमारे सच्चे मित्र हैं ।

सत्संग के लाभ ही लाभ हैं और कुसंग की हानियाँ ही हानियाँ हैं । सर्वप्रथम सच्ची ज्ञान प्राप्ति सत्संग से ही होती है । इसलिये ऋग्वेद में सत्संग को विदथ (ज्ञानस्थान) के नाम से पुकारा गया है । वस्तुतः वही सत्संग विदथ है जहाँ वेदमंत्रों पर आधारित प्रवचन होते हैं । देवर्षि नारद भक्ति सूत्र में लिखते हैं–

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव –40

महापुरुषों का संग प्रभुकृपा से मिलता है ।

इसी कारण तुलसीदास रामचरितमानस के बालकांड में लिखते हैं–

बिनु सत्संग विवेक न होई । रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ।
सतसंगत मूदु मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला । ।
सठ सुधरहिं सत संगति पाई । पारस परस कुघात सुहाई ।
विधिबस सुजन कुसंगत पर ही । फनि मनि, सम निजगुण अनुसरही । ।

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता और प्रभु कृपा के बिना सत्संग की प्राप्ति नहीं होती । सत्संग आनंद एवं कल्याण का मूल है । इसकी प्राप्ति ही फल है और सब साधनों को तो फूल समझना चाहिये । पारसमणि के स्पर्श मात्र से लोहा भी सोना हो जाता है तो वे वहाँ भी सांप की मणि के समान अपने गुणों का ही प्रकाश करते हैं । अतः सत्संग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कवि ''सेवक'' जी लिखते हैं–

आदत है अगर कहीं जाने की तो सत्संग में तुम जाया करो ।
आदत है अगर कमाने की तो अच्छे कर्म कमाया करो ।
आदत हे अगर अपनाने की तो सब के गुण अपनाया करो ।
आदत है अगर गुस्सा खाने की तो मन पर गुस्सा खाया करो ।
आदत है अगर शर्माने की तो पापों से शर्माया करो ।
आदत है जो 'सेवक' गाने की तो गीत प्रभु के गाया करो । ।
अगर उन्नति चाहते हो –
आदत है अगर स्वाध्याय की तो वेद पढ़ा करो ।
आदत है अगर स्वस्थ रहने की तो प्रातः उठ सैर को जाया करो ।
आदत है अगर सुन्दर दीखने की तो ब्रह्मचर्य का पालन करो ।
आदत है अगर ऊपर उठने की तो अग्नि को देखा करो ।
आदत है अगर चोरी की तो जेल में क़ैदियों को देखा करो ।
अगर सुधरना चाहते हो तो महापुरुषों की जीवनी पढ़ा करो ।

–लालचन्द चौहान

6. आत्मबोध

कहने को मैं अजर हूँ पर पीरी सताती है ।

कहने को मैं अमर हूँ पर मौत डराती है । ।

आत्मा का अर्थ है मैं जो मेरा नहीं है । जैसे मेरा शरीर, मेरा घर, मेरा भाई, मेरा मित्र आदि । वही मैं हूँ । मेरा और मैं को अलग-अलग समझें । जैसे मेरा शरीर, मेरी माता, मेरा पिता, मेरा भाई, मेरा बेटा, मेरी पत्नी से मैं सर्वथा अलग हूँ क्योंकि ये सब क्षणभंगूर एवं नाशवान् हैं और मैं अजर एवं अमर आत्मा हूँ । मेरा इन से अस्थायी एवं स्वार्थ का सम्बन्ध है । विभिन्न ग्रंथों में इसको विभिन्न नामों से पुकारा गया है । जैसे वेद में अल्पज्ञ, भोक्ता, अणु, कठोपनिषद् में अमर्त्य, पुरुष, देही, श्वेताश्वेतोपनिषद् में अज आदि । अतः प्रत्येक व्यक्ति को विचार करना चाहिये कि मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्त्तव्य है ? मैं नाम, रूप, धर्म, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि नहीं हूँ ।

मुझे संसार के लोग धर्मपाल कपूर के नाम से पुकारते हैं परन्तु जब मेरा जन्म हुआ था, उस समय यह मेरा नाम नहीं था । परन्तु घर वालों ने मेरा नामकरण करते समय मुझे धर्म पाल कपूर कह दिया । मेरा पूर्व जन्म में व गर्भकाल में यह नाम नहीं था । यह ऐसा नाम है जो कभी भी बदला जा सकता है । वस्तुतः हम जागृत अवस्था में शरीर को मैं कहते हैं, स्वप्न अवस्था में मन को मैं कहते हैं और सुषुप्ति अवस्था में आत्मा को मैं कहते हैं । इस अवस्था में आत्मा की कोई भी कामना नहीं होती ।

मैं शरीर भी नहीं क्योंकि शरीर जड़ है और मैं चेतन हूँ । बाल्यकाल में मेरे शरीर का पृथक् स्वरूप था और युवावस्था में कुछ और है । शरीर का रूप बदलता रहता है । मैं इन्द्रियाँ भी नहीं हूँ । यदि मैं इन्द्रियाँ होता तो उनके विनाश से मेरा विनाश हो जाता । इस प्रकार मैं मन भी नहीं हूँ क्योंकि सुषुप्तिकाल में मन नहीं रहता परन्तु मैं रहता हूँ । अतः जागने के बाद मुझ को इस बात का ज्ञान है कि मैं सुख से सोया था । अतः मन चंचल एवं चल है परन्तु मैं स्थिर और अचल हूँ ।

मैं बुद्धि भी नहीं हूँ क्योंकि बुद्धि भी क्षय और वृद्धि स्वभाव वाली है। परन्तु मैं क्षय बुद्धि से सर्वथा रहित हूँ। बुद्धि में मलिनता, स्थिरता, अस्थिरता, तीव्रता आदि विकार होते हैं परन्तु मैं इन सबसे रहित और इन सब स्थितियों को जानने वाला हूँ। अतः जहाँ विज्ञान की सीमा समाप्त होती है वहाँ अध्यात्म की सीमा आरम्भ होती है। अतः आत्मदर्शन के लिये रागद्वेष त्यागना आवश्यक है। वस्तुतः जिस व्यक्ति के हृदय में रागद्वेष की तरंगें नहीं उठती वही आत्म दर्शन कर सकता है। अतः रागद्वेष से अलग रहना ही अध्यात्म का प्रथम सोपान है।

आत्मा की परिभाषा–

आत्मा एक शुद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, अविनाशी, दिव्य चेतन तत्त्व है।

आत्मा की महत्ता –

आत्मा यदि शरीर में न हो तो देव दुर्लभ मानव शरीर का कोई मूल्य नहीं रह जाता, तो संसार के अन्य पद पदार्थों की क्या चर्चा। विश्व के विशाल वैभव एवं पृथ्वी पर्यन्त राज्य, असीम भोग सामग्रियाँ ये सब कुछ आत्मा के अभाव से शून्य हैं। जिस आत्मा से इन सबकी महिमा है, जिसके नाते ये सभी महिमावान्, मूल्यवान् बने हुए हैं, यदि आप उसकी महत्ता नहीं समझते, उसका आदर नहीं करते, पद-पदार्थ के प्रलोभन में सुख भोग के साधनों के नीचे उसे दबा देते हैं तो आप आत्म हत्यारे हैं।

वस्तुतः यदि मानव को ''आत्मबोध'' हो जाये कि मैं कौन हूँ, मेरा लक्ष्य क्या और वह लक्ष्य मुझे कैसे प्राप्त होगा? मैं अजर, अमर, अविनाशी आत्मा हूँ और यह शरीर आत्मा का साधन है और पूर्व जन्म के कर्मानुसार इस संसार में आया हूँ। मेरे जीवन का लक्ष्य आनन्द (Bliss) प्राप्ति है। वह लक्ष्य की पूर्ति प्रभु कृपा और किसी महापुरुष की कृपा हो सकती है तो समझना चाहिये कि उसे क्षुद्र से महान्, नर से नारायण एवं पुरुष से पुरुषोत्तम बनने से कोई नहीं रोक सकता। आप नहीं जानते हैं कि आप के शरीर में हृदय के अन्दर परमात्मा निवास करता है।

आत्मा प्रकृति के तीनों गुणों–सत्व, रज और तम से परे है। अतः

किसी भी जड़त्व से इसका निर्माण नहीं हो सकता। वह तीनों अवस्थाओं-जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति में एक जैसी रहती है। इसका कोई भी परिणाम नहीं निकलता जैसे दूध से दही। मानव शरीर की सारी क्रियाएँ जैसे साँस लेना और निकालना, आँखों का पलकों से मिलना, भूख, प्यास आदि का लगना सब आत्मा के कारण ही होते हैं। इसके शरीर से निकलने पर ये सारी क्रियाएँ रुक जाती हैं। अतः यही कर्ता एवं भोक्ता है। छान्दोग्योपनिषद् में आत्मा के आठ गुणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

जो आत्मा, पापरहित, जरारहित, मृत्युरहित, शोकहीन, भूख से रहित, प्यास से रहित, सत्यकाम और सत्यसंकल्प हैं उसे खोजना चाहिये उसे जानना चाहिये। जो उसको खोजकर जान लेता है वह सब लोकों और सारी कामनाओं को प्राप्त है। C.D. Larson ने अपनी पुस्तक The Great within में लिखा है–

You can become what you desire to become, the great within is limitless.

आप जो भी चाहे वही बन सकते हो क्योंकि आपकी आत्मा में असीम शक्ति है।

आत्मा का स्वरूप–

आत्मा का स्वरूप चाणक्य नीति में भी लिखा है–

पुष्पै गन्धं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम्।

इक्षौ गुड़ं तथा देहे, पश्यात्मानं विवेकतः।। –7.21

जैसे पुष्प में गंध होती है, तिलों में तेल, काष्ठ में अग्नि, दूध में घी और गन्ने में गुड़ होता है वैसे ही शरीर में आत्मा और परमात्मा का निवास समझकर विवेक के द्वारा बुद्धिमान मनुष्य को आत्मा व परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहिये। ओशो ईशावास्योपनिषद् में लिखते हैं –

उस आत्मतत्व की छाया को पाये बिना कोई विश्राम नहीं है और उस आत्मतत्व को पाये बिना जीवन में कोई मरुद्यान नहीं है और उस आत्मतत्व को पाये

बिना जीवन में कभी कोई रस की धारा नहीं बही न बहेगी। गेटे आदि ने आत्मा को नित्यत्व माना और पैरी ने आत्मा को चेतन माना।

अतः आप शरीर नहीं आत्मा हैं। यह आत्मा बूढ़ी नहीं होती, युवा नहीं होती, बच्चा नहीं होती, यह कभी भी लड़का या लड़की नहीं होती। सुकरात, प्लेटो, शॉपनहायर आदि ने आत्मा को नित्य तत्त्व माना।

आत्मा के साथ क्या-क्या जाता है?

खाली हाथों जहाँ से सिकन्दर गया।
सब खजानों की चाबी धरी रह गयी।।
वैद्य लुकमान को भी क़ज़ा खा गयी।
ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं।।

संसार में जब कोई व्यक्ति मरता है तो धन, संतति, पद-प्रतिष्ठा आदि यहीं छोड़कर चला जाता है। लोग बहुदा कहते हैं कि व्यक्ति के साथ कुछ भी नहीं जाता और उसे यहाँ से खाली हाथ जाना पड़ता है। यहाँ तक कि गुरु नानक देव जी ने लिखा है कि कोई व्यक्ति अपने साथ सूई तक नहीं ले जा सकता।

यह सत्य है कि प्रत्यक्ष रूप से प्राणी के साथ कुछ भी नहीं जाता फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से उसके साथ अधोलिखित 6 मुख्य वस्तुएं जाती हैं– (1) आत्मा, (2) सूक्ष्म शरीर, (3) कारण शरीर, (4) दान, (5) संस्कार (6) धर्म आदि।

प्रश्न – मैं कौन हूँ?

उत्तर –(1) मैं शरीर नहीं हूँ, अपितु शरीर का स्वामी अजर अमर एवं शाश्वत आत्मा हूँ।

(2) यह इन्द्रियों का स्वामी है।

(3) यह कर्म करने में स्वतंत्र, परन्तु कर्मफल भोगने में परतंत्र है।

(4) आत्मा, परमात्मा और प्रकृति की भाँति नित्य है।

(5) इसका शरीर में आना जन्म और शरीर से निकलना मृत्यु है।

आत्मा का परिमाण–

बालाग्रशतभागस्य शतधा कलपतस्य च ।

भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ।।

–श्वेताश्वतरोपनिषद् 5.9

एक बाल की नोक के हम 100 भाग कर लें, फिर उन में से एक भाग के पुनः 100 भाग कर ले । उनमें से एक भाग जितना सूक्ष्म हो सकता है अर्थात् बाल की नोक के 10,000 भाग करने पर उनमें से एक भाग जितना सूक्ष्म हो सकता है उसके समान आत्मा का स्वरूप समझना चाहिये । वस्तुतः आत्मा सूक्ष्म होती है । यहाँ तक कि खुर्दबीन के द्वारा देखने से कोई भी वस्तु का आकार 10,000 गुणा बड़ा हो जाता है, परन्तु इसके द्वारा भी आत्मा को देखा नहीं जा सकता । हमारे शरीर में आत्मा-परमात्मा जिन्हें बालक व पालक, भोक्ता व प्रेरक भी कहते हैं सदा इकट्ठे रहते हैं । जैसे प्रकाश और उसकी छाया, व्यक्ति और उसकी छाया कभी भी अलग नहीं हो सकते इसी प्रकार ये भी कभी अलग नहीं हो सकते । जैसे एक उर्दू शायर ने लिखा है–

मैं और मेरा यार दोनों एक ही बस्ती में बसते हैं ।

किस्मत की खूबी देखिए दर्शन को तरसते हैं ।

यह तो मालूम हो गया कि परमात्मा आत्मा में भी है । परन्तु जब आत्मा का ही कुछ पता न हो तो परमात्मा का भला क्या पता चलेगा ? अब्दुल हमीद अदम ने लिखा है–

दूसरे से बहुत आसान है मिलना साकी

अपनी हस्ती से मुलाकात बड़ी मुश्किल है ।

विभिन्न ग्रंथों में आत्मा की अमरता का वर्णन–

अहमिन्द्रो व परा जिग्य इद्धनं न । मृत्यवेऽव तस्थे कदाचन ।।

सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः संख्ये रिषाथन । –ऋ.10.48.5

मैं आत्मा हूँ । ऐश्वर्य में मैं कभी पराजित नहीं होता । मृत्यु मुझे कभी पकड़ नहीं सकती । यज्ञार्थ कर्मों का ऐश्वर्य प्राप्त कर मेरी मैत्री में कोई कभी नष्ट नहीं होता ।

आत्मसुधार सारे सुधारों का मूल है । यदि संसार में आत्मसुधार की

भावना आ जाये तो स्वतः ही सारे संसार का सुधार हो जाये । विश्व सुधार के लिये यदि हम और कुछ न कर सके, केवल जन-जन में आत्मसुधार की भावना जागृत कर दे तो मानव जाति के सुधार की दिशा में एक बहुत बड़ा काम हो जाये । वस्तुतः सुधार के नाम पर आज एक बहुत बड़ा तमाशा हो रहा है । यदि मैं कहूँ कि आत्मसुधार के नाम पर बहुत भारी बिगाड़ हो रहा है तो यह बात अटपटी सी लगेगी परन्तु यह एक सच्चाई है कि सुधार के नाम पर आज एक विश्वव्यापी व्यापार हो रहा है । मानव जाति के इतिहास में मानव सुधार के लिए आज जितना अधिक यत्न हो रहा है उतना इससे पूर्व कभी नहीं हुआ था । परन्तु सुधार का जितना अधिक यत्न किया जाता है संसार बिगड़ता ही चला जा रहा है । इसका कारण यह है कि सुधार करने वाले स्वयं बिगड़े हुये हैं । वैद्य स्वयं बीमार हैं । डॉक्टर स्वयं रोगी है । योगी स्वयं भोगी है । प्रचारक स्वयं भ्रष्ट है । अपने प्रवचनों व लेखों में संसार के सुधार के लिये आप जो बातें व्यक्त करते हैं क्या वे बातें आपके जीवन पर चरितार्थ होती हैं । यदि होती हैं तो आप वस्तुतः बधाई के पात्र हैं । यदि नहीं होती तो मुझे आपके हाल पर अफसोस है ।

आत्म साक्षात्कार–

यदि मानव भौतिक प्रगति के साथ-साथ आत्मोत्थन करेगा । इसके बाद स्वयं ही उसको भगवत्कृपा से आत्म साक्षात्कार होगा । आत्म साक्षात्कार के लिये मुख्य उपाय ये हैं–

(1) प्रभु मिलन की इच्छा – हमारे दिल में प्रभुमिलन की प्रबल इच्छा ऐसी होनी चाहिये जैसे भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये होती है । एक सच्चे भक्त को समझना चाहिये कि हे प्रभु ! मैं तेरा खिलौना हूँ जैसा तू चाहे खेल, मैं तेरा साज हूँ जैसा तू चाहे बजा ।

एक बार की बात है कि सम्राट् अब्राहिम ने अपना नौकर रखने के लिये कुछ गुलामों का साक्षात्कार लिया । कई व्यक्तियों ने साक्षात्कार दिया । परन्तु बादशाह को कोई भी नौकर पसंद नहीं आया । आखिर लुकमान का नम्बर आया ।

बादशाह ने लुकमान से पूछा तेरा नाम क्या है ?

लुकमान ने उत्तर दिया कि गुलामों का कोई नाम नहीं होता हजूर । जो मेरा मालिक मेरा नाम रख देगा वही मेरा नाम होगा ।

बादशाह ने आगे लुकमान से पूछा आप क्या वेतन लेंगे ? फिर लुकमान ने उत्तर दिया, जो मेरा मालिक अपनी मर्जी से मुझे दे देगा, वही स्वीकार कर लूँगा ।

बादशाह ने उस से फिर पूछा आप क्या खाओगे, उसने उत्तर दिया जो मेरा मालिक खुशी से मुझे खिला देगा वही खा लूँगा ।

आखिर बादशाह ने लुकमान से अंतिम प्रश्न किया आप क्या पहनोगे उसने कहा जो मेरा मालिक मुझे पहना देगा वही पहनूँगा ।

अंत में बादशाह आकर लुकमान के पैरों में गिर पड़ा और उसकी आँखों में आँसुओं की झड़ी लग गई ।

बादशाह ने कहा लुकमान आज तूने मुझे प्रभुभक्ति का सच्चा मार्ग दिखा दिया ।

(2) विनम्रता – आत्मसाक्षात्कार के लिये अहंकार के स्थान पर विनम्रता आनी चाहिये ।

(3) व्याकुलता – प्रभुमिलन के लिए हृदय ऐसे तड़फे जैसे मछली जल के अभाव से तड़फती है ।

(4) विश्वास – भक्त का प्रभु पर पक्का विश्वास होना चाहिये जो वह करता है उसके कल्याण के लिये ही करता है ।

(5) निष्ठा – आत्मसाक्षात्कार के लिये प्रभु पर भक्त की ऐसी निष्ठा हो जैसे कि प्राण आपका वफादार है ।

(6) त्याग – आत्मसाक्षात्कार के लिये भक्त में त्याग की भावना का होना भी परमावश्यक है । वह भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्त न हो । वह उनको त्यागमय भाव से भोगे ।

(7) समर्पण – आत्म साक्षात्कार के लिये प्रभु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण का होना परमावश्यक है। वह जो कुछ भी काम करे उसके फल को प्रभु पर ही छोड़ दे। उसे प्रत्येक कार्य प्रभु प्रसाद समझकर ही करना चाहिये। जैसे मीरा का समर्पण देखिये–

जहाँ बैठाएँ, तित बैठूँ मैं, जो बेचे बिक जाऊँ।

तेरी मेरी प्रीत पुरानी, तुझ बिन पल न रह पाऊँ।।

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ।

अंततः इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हमें नारद, नचिकेता, मैत्रेयी, महर्षि दयानंद आदि महापुरुषों की भाँति आत्मा को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। हम मूल में आत्मा है, शरीर हमारा घर है। हम आत्मा की नगरी के निवासी हैं, संसार रूपी नगरी की सैर करने निकले हैं। अरे मनुष्यो! जाओ इस दुनियाँ की सैर करो। उसी भगवान् ने इस दुनियाँ को बनाया है जिसने तुम्हें यहाँ भेजा है परन्तु इसकी सैर करते हुए यह न भूल जाना कि तुम कहाँ से आये हो, कहाँ के रहने वाले हो, कहाँ जाओगे। आत्मा शाश्वत है और शरीर नाशवान् है जब यह शरीर से निकल जाती है तो शरीर मर जाता है। शरीर तो अब भी मुर्दा है और जब इसको अर्थी पर रखा जायेगा तब भी मुर्दा होगा इसमें आत्मा के कारण ही चेतना है। इसलिये अंजील ने लिखा है–

मनुष्य चाहे संसार के सब पदार्थों पर अधिकार प्राप्त कर ले परन्तु वह अपनी आत्मा के संबंध में कुछ नहीं जानता तो उसका सम्पूर्ण जीवन निष्फल चला जाता है।

कोई किसी का मित्र नहीं है और कोई किसी का शत्रु नहीं है। अपितु स्वयं हमारी आत्मा ही हमारी मित्र है और स्वयं आत्मा हमारी शत्रु है। यदि हमारी आत्मा शुभ कर्म करती है तो वह हमारी मित्र है और यदि वह कुकर्म करती है तो वह हमारी शत्रु है। जैसे यदि एक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर संयम रखता तो वह अपना मित्र है और यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह अपना शत्रु बन जाता है। अतः प्रतिदिन आत्मचिन्तन कीजिए।

मैं (आत्मा) कितनी महान्, शान्तिस्वरूप, प्रेमस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शुद्ध,

बुद्ध, पवित्र, अजर, अमर और अविनाशी हूँ। इसीलिये मुझे ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए जिससे परमात्मा का नाम बदनाम हो। मुझे हर क्षण परमात्मा का नाम रोशन करना है। इससे आत्मा को दृढ़ता मिलेगी। इस प्रकार आत्मचिंतन के द्वारा ही हमें आत्मबोध होगा और जीवन में सफलता मिलेगी। इसलिये एक हिन्दी कवि ने मानव शरीर को पिंजड़ा और आत्मा की तोते से तुलना इस प्रकार की है–

कर ले यत्न हज़ार, तोता उड़ जाना।
यह तोता है बड़ा अनोखा, एक दिन देवे जरूरी धोखा।।
क्या सोते चादर तान, तोता उड़ जाना।
इस तोते का नहीं ठिकाना, इसने निकल जरूरी जाना।।
रो रो हो हैरान, तोता उड़ जाना।
जब पिंजड़े से उड़कर जावे, पकड़ो कितना हाथ न आवे।।
लम्बी भरे उड़ान तोता उड़ जाना।
योगी जनों ने जोर लगाया, नहीं किसी ने काबू पाया।।
हो गया सब बेकार तोता उड़ जाना।
इससे भाइयो ओ३म् उचारों ओ३म् नाम हृदय में धारो।।
हो जाये बेड़ा पार तोता उड़ जाना।।

7. प्रेम

प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा प्रजा जेहि रुचि, सीस देई लै जाय ।।
जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि मैं नाहिं ।
प्रेम गली अति साँकरी ता मे दो न समाहिं ।। **–कबीर**

जब व्यक्ति केवल लेना ही लेना जानता है तो वह केवल स्वार्थ होता है । परन्तु जब वह कुछ लेता भी है और देता भी है तो वह व्यापार बन जाता है । हम देखते हैं कि अधिकतर संसार में व्यापार ही चलता है । अतः इस संसार को लेन-देन की मण्डी कहा गया है । परन्तु इसके विपरीत जब व्यक्ति केवल देता ही देता है तो वह प्रेम कहलाता है । प्रेम मानवता की सुगंध है । जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम होता है वही दूसरों के प्रति दया व परोपकार करता है । अतः एक अंग्रेज़ी लेखक ने प्रेम की परिभाषा करते हुए लिखा है–

Love is not exam that you pass or fail, love is not a competition that you win or loose, love is a feeling in which you take care of some one, more than yourself.

प्रेम परीक्षा नहीं है जिसमें आप पास या फेल हो जाते हो । प्रेम कोई प्रतियोगिता भी नहीं है जो आप जीतते हो या हारते हो । परन्तु प्रेम एक अनुभूति का विषय है जिसके द्वारा आप किसी दूसरे का स्वयं से अधिक ध्यान रखते हो ।

अतः ऐसी कोई भी समस्या नहीं है जिसका समाधान प्रेम न हो । प्रेम से सब को वशीभूत किया जा सकता है । यहाँ तक कि प्रेम से केवल व्यक्ति ही नहीं अपितु जानवर भी अधीन हो जाते हैं । महात्मा बुद्ध ने प्रेम को प्रार्थना, महावीर ने वात्सल्य और ईसा ने परमात्मा को प्रेम के नाम से पुकारा है । प्रार्थना बड़ों से, प्रेम बराबर वालों से और वात्सल्य छोटे से होता है । गाय और बछड़े की भाँति वात्सल्य करो । गाय का वात्सल्य निःस्वार्थ प्रेम है । मानव को परमात्मा ने प्रेम के लिये पैदा किया था और पदार्थ उपयोग के लिए पैदा किये थे । परन्तु मानव पदार्थों से प्रेम कर बैठा और उनका उपयोग करने लग गया । प्रेम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कबीर लिखते हैं–

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय ।
ढ़ाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ।।
जिस घट प्रेम न संचरै सो घट जानु मसान ।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिन प्रान ।।

प्रेम की रोटी में वह स्वाद होता है जो छप्पन प्रकार के भोगों में नहीं होता । प्रेम से वशीभूत होकर मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने शबरी के झूठे बेर खा लिये । योगिराजकृष्ण ने विदुर की पत्नी के केले के छिलके खा लिये और दुर्योधन के छप्पन प्रकार के भोगों का त्याग कर दिया । प्रेम वासनाहीन होता है और जब यह सिमटता है तो वासना बन जाता है और जब प्राणिमात्र में फैलता है तो साधना बन जाता है । एक उर्दूशायर ने कितना सुन्दर लिखा है–

सदियों के फासले लम्हों में मिट सकते हैं ।
हाथ मिलाने वाले अगर दिलों को मिला लें ।।

प्रेम कुएं के पानी की भाँति है । कुएं में से जब पानी निकालते हैं उतना ही या उससे भी अधिक नया पानी कुएं में और आ जाता है । जितना आप प्रेम बाँटेंगे उतना ही प्रेम का खजाना आपके अंदर बढ़ता जायेगा । यह खजाना भौतिक पदार्थों की भाँति कम नहीं होता । यदि कुएं का पानी निकाला न जाये तो सड़ने लगता है यही हाल व्यक्ति का है जब वह प्रेम बाँटने के मामले में कंजूस हो जाता है तो उसका हाल भी सड़े पानी की भाँति हो जाता है । अधिकतर आप को वे व्यक्ति जीवन से हताश व उदास मिलेंगे जो प्रेम बाँटने की कला को भूल चुके होते हैं या फिर जिन्होंने अपना प्रेम कुछ चुनिंदा व्यक्तियों के लिये ही रखा होता है । याद रखो ! प्रेम उसी को मिलता है जो प्रेम देना जानता है । जो प्रेम देना नहीं जानता अपितु प्रेम को सदा पाने की इच्छा रखता है । वह व्यक्ति सब कुछ होने के बावजूद भी दुःखी रहता है । जैसे रहिम लिखते हैं–

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ो चटकाय ।
जोड़े से फिर ना जुड़े जुड़े गांठ पड़ जाय ।।

मोह एवं ईर्ष्या प्रेम के महानतम शत्रु हैं । प्रेम व्यक्ति के जीने के लिये

उतना ही आवश्यक है जितना की वायु और जल । परन्तु व्यक्ति अज्ञानवश यही चाहता है कि उसे लोग प्रेम करे जबकि जरूरी यह है कि वह भी दूसरों को प्रेम करे । जब हम दूसरों से प्रेम करना आरंभ करेंगे तो हमें प्रेम स्वयं ही मिलना आरंभ हो जायेगा बशर्ते हमारा प्रेम निःस्वार्थ हो । वस्तुतः सब गुण एक ओर और प्रेम का गुण एक ओर । यदि हम यह गुण अपना ले तो इस हृदय में आत्मा के साथ परमात्मा का स्वरूप साफ दिखाई देगा । जब प्रेम की दृष्टि बढ़ाये तो घृणा स्वयं समाप्त हो जायेगी । जैसे गन्दी नाली में साफ पानी डालें तो नाली साफ हो जाती है ।

संसार का प्रत्येक मानव गुण व अवगुण का सुन्दर समन्वय होता है । यदि अपनत्व पैदा करना है तो दूसरों के अवगुणों को नज़र-अन्दाज़ करके उसके गुणों की प्रशंसा करनी होगी तभी प्रेम को स्थान मिलेगा । जैसे गाय अपने बछड़े की ओर बढ़े तो सभी द्वेष दूर हो जाते हैं और आपस में प्रेम पैदा होता है । प्रेम बिल्कुल निष्कपट निःस्वार्थ भाव से सम्पूर्ण समर्पण के साथ करना चाहिये । प्रेम में कहीं कोई स्वार्थ की भावना शर्त एवं पूर्वाग्रह नहीं हो सकता क्योंकि प्रेम कोई व्यापार की वस्तु नहीं है । प्रेम करने के लिये मैं और मेरे की भावना समाप्त करके हम और हमारे की भावना पैदा करें । अतः आइए प्रेम के जादू को समझें और अपने मन को उदारचित बनाकर उसे प्रेम का कुआं बनायें जिसमें सब के लिये प्रेम रूपी पानी हो । प्रेम करके देखिये आप कम खाने पीने से भी अधिक हृष्ट-पुष्ट अनुभव करेंगे । यदि किसी रोग की दवाई खाते हैं तो दवाई की मात्रा कम हो जायेगी । जरा एक कहानी सुनिये–

एक दिन एक महिला अपने घर के बाहर आई और उसने 3 संतों को अपने घर के सामने देखा । वह उन्हें जानती न थी । औरत ने कहा–कृपया भीतर आइये और भोजन करिए ।

संत बोले–''क्या तुम्हारे पति घर पर हैं ?''

महिला ने कहा – नहीं ।

संत बोले – ''हम तभी भीतर आएंगे जब वह घर पर हों ।''

शाम को उस महिला का पति घर आया और महिला ने उसे यह सब बताया ।

महिला के पति ने कहा–''जाओ और उनसे कहो कि मैं घर आ गया हूँ और उनको आदर सहित बुलाओ ।''

महिला बाहर गई और उनको भीतर आने के लिए कहा ।

संत बोले–''हम सब किसी भी घर में एक साथ नहीं जाते ।''

''पर क्यों ?'' – महिला ने पूछा ।

उनमें से एक संत ने कहा–''मेरा नाम धन है' । फिर दूसरे संतों की ओर इशारा करके कहा–''इन दोनों के नाम सफलता और प्रेम हैं । हममें से कोई एक ही भीतर आ सकता है । आप घर के अन्य सदस्यों से मिल कर तय कर लें कि भीतर किसे निमंत्रित करना है ।''

महिला ने भीतर जाकर अपने पति को यह सब वृत्तान्त सुनाया । उसका पति बहुत प्रसन्न हो गया और बोला– यदि ऐसा है तो हमें धन को आमंत्रित करना चाहिए । हमारा घर खुशियों से भर जायेगा । लेकिन उसकी पत्नी ने कहा–''मुझे लगता है कि हमें सफलता को आमंत्रित करना चाहिए ।'' उनकी बेटी दूसरे कमरे से यह सब सुन रही थी । वह उनके पास आई और बोली–मुझे लगता है कि हमें प्रेम को आमंत्रित करना चाहिए । प्रेम से बढ़कर कुछ भी नहीं है । ''तुम ठीक कहती हो, हमें प्रेम को ही बुलाना चाहिए'' – उसके माता-पिता ने कहा ।

महिला घर के बाहर गई और उसने संतों से पूछा–''आपमें से जिनका नाम प्रेम है वे कृपया घर में प्रवेश कर भोजन ग्रहण करें ।'' प्रेम घर की ओर बढ़ चले । शेष दोनों संत भी उनके पीछे चलने लगे । महिला ने आश्चर्य से उन दोनों से पूछा–''मैंने तो केवल प्रेम को आमंत्रित किया था । आप लोग भीतर क्यों आ रहे हैं ?''

उनमें से एक ने कहा–''यदि आपने धन और सफलता में से किसी

एक को आमंत्रित किया होता तो केवल वही भीतर जाता। आपने प्रेम को आमंत्रित किया है। प्रेम कभी अकेला नहीं जाता। प्रेम जहाँ-जहाँ जाता है, धन और सफलता उसके पीछे जाते हैं।''

प्रेम निम्नलिखित तीन प्रकार का होता है–

1. सात्विक प्रेम :– सात्विक प्रेम वह है जो कि सर्वथा निष्कपट हो और निःस्वार्थ भाव से सम्पूर्ण समर्पण के साथ किया जाये। जैसे आप गुलाब के फूल को देखते हैं और उसके सौंदर्य से आपको प्रेम हो जाता है। यदि आपका प्रेम सच्चा है तो आप उसको नहीं तोड़ेंगे। क्योंकि यदि आपने उसको तोड़ दिया तो वह फूल मुरझा जायेगा जोकि सच्चा प्रेम करने वाला यह कभी नहीं चाहेगा।

2. राजसिक प्रेम :– वह है जिसमें लगाव होता है और प्रेम करने वाला बदले में कुछ पाना चाहता है।

3. तामसिक प्रेम :– इस प्रकार के प्रेम में कपट व स्वार्थ होता है।

इनमें से केवल सात्विक प्रेम ही श्रेष्ठ माना जाता है। वह केवल प्रभु के साथ होता है जबकि सात्विक प्रेम में तो सागर की भाँति फिर भी तह होती है। परन्तु प्रभु प्रेम की कोई तह नहीं होती है क्योंकि प्रभु स्वयं प्रेम के केन्द्र हैं और वे प्रेमस्वरूप है। प्रेमस्वरूप परमात्मा से और उसके बनाये हुये प्राणियों से जब हम प्रेम करते हैं तो स्वयं प्रेमस्वरूप हो जाते हैं और प्रेम में हमें परमसंतोष की अनुभूति होती है। इस संसार में हमने जन्म लिया है तो इसे अपना बनाना होगा। न तो हम परमात्मा को भूले और न इस संसार को भूलें।

मैं आपकी सेवा में प्रेम के विषय में एक शिक्षाप्रद कहानी प्रस्तुत करना चाहता हूँ। एक सेठ जी की चार बहुएं थीं। एक दिन लक्ष्मी ने सेठ से आकर कहा, अब मैं आपके घर से जाना चाहती हूँ आप केवल एक वर मांग लो। सेठ जी ने अपनी बहुओं की राय पूछी। पहली बहू ने कहा कि जमीन मांग लो, दूसरी ने कहा सोना मांग लो, तीसरी ने कहा स्कूल मांग लो परन्तु चौथी

बहू बहुत समझदार थी उसने कहा प्रेम मांग लो। सेठजी ने लक्ष्मी से प्रेम मांग लिया। लक्ष्मी ने कहा कि अब मैं तेरे घर को छोड़कर नहीं जाऊंगी। क्योंकि जहाँ प्रेम है वहीं लक्ष्मी रहती है जैसे यदि घर में प्रेम होता है तो उस घर का 80 वर्षीय वृद्ध भी जीना चाहता है। परन्तु इसके विपरीत जिस घर में प्रेम नहीं होता उस घर में 20 वर्षीय जवान भी आत्महत्या करना चाहता है। हम देखते हैं कि आज अधिकतर घरों में प्रेम नहीं है और वहाँ पर स्वार्थ कलह लड़ाई झगड़े हैं। इसीलिये उर्दू शायर जाफ़र ज़टल्ली ने लिखा है–

न यारों में रही यारी न भय्यो में वफादारी
मुहब्बत उठ गई सारी अजब यह दौर आया है

इसी प्रकार एक उर्दूशायर ने फरमाया है–

न मुहब्बत न मुरब्बत (शिष्टाचार)।
मैं शर्मिंदा हूँ आदमी होकर।।

इसके अतिरिक्त स्वामी विवेकानंद जी लिखते हैं–

Men are ever running after wives and wealth and fame in this world. Sometimes they hit very hard on the head and they find out what this world really is ..... All the love of the world is hypocrisy and hollowness. IV. 15

इस संसार में आदमी अपनी पत्नियों, धन और प्रसिद्धि के लिये दौड़ रहे हैं, कभी-कभी उनके मस्तिष्क पर बहुत जोर से चोट पड़ती है और उन्हें मालूम होता है कि वास्तव में यह संसार क्या है? संसार का सारा प्रेम धोखा एवं खोखला है।

वस्तुतः प्रेम में स्वार्थ की गंध भी नहीं होनी चाहिये। जहाँ स्वार्थ का भाव आया वहीं प्रेम का टूटना आरंभ हुआ। क्योंकि स्वार्थ व अहंकार प्रेममार्ग में बाधा है। जैसे हमने किसी के हित का काम किया और यह कह दिया कि इसके हित-साधन में मेरा कोई भी स्वार्थ नहीं है। बस, इस अहंकार के उत्पन्न होते ही प्रेम की वीणा के तार छिन्न-भिन्न होने लगते हैं। आप सेवा करके किसी को रोगादि संकटों से बचाते हैं या धन के द्वारा किसी भी विपत्ति

का निवारण करते हैं। ये सभी कल्याणकारी कार्य प्रेम की वृद्धि में बहुत सहायक हैं, परन्तु आप इन सेवाओं को यदि किसी के सामने प्रकट कर देते हैं तो सब किये-कराये की महत्ता घट जाती है। अतः किसी की सेवा करके उसे कहना नहीं चाहिए क्योंकि अपने उपकारों को प्रकट करने से अहंकार बढ़ जाता है और अहंकार को कोई भी सहन नहीं कर सकता है। व्यक्ति स्वयं चाहे अहंकार का कितना ही शिकार बना रहे, परन्तु वह दूसरे के अहंकार को सहन नहीं कर सकता है।

प्रेम की उत्पत्ति सेवा से होती है। भगवद्प्रेम की प्राप्ति भी सेवा व भक्ति से ही होती है। सेवा से भी भक्ति का दर्जा ऊँचा है। सेवा तो हर किसी की हो सकती है। परन्तु भक्ति हर किसी की नहीं होती है। भक्ति में सेवा तो रहती ही है परन्तु साथ में श्रद्धा व प्रेम का भी समावेश रहता है। प्रेम का महत्व तो भक्ति से भी अधिक है। प्रेम भक्ति का फल है और वह व्यापक भी है। सेवा का फल भी प्रेम ही है। प्रेम की प्राप्ति भक्ति व उपकार से हो सकती है। अतः प्रेम के इच्छुकों को चाहिये कि वे यथा साध्य सबके उपकार व सेवा करने में तत्परता के साथ लग जायें। जहाँ स्वार्थ व अहंकार होता है वहाँ प्रेम नहीं ठहर सकता।

यदि आपके पास 100 रुपये हैं और उसमें से आप 10 रुपये किसी को दे देते हैं तो आपके पास 90 रुपये रह जायेंगे। उसके पश्चात् 10 रुपये और देते हैं तो आपके पास अब 80 रुपये रह जायेंगे। अर्थात् आप जितना-जितना धन किसी को देते जायेंगे आपका उतना-उतना धन कम होता जायेगा। यह सिद्धांत केवल भौतिक पदार्थों पर ही लागू होता है। परन्तु प्रेम की बात इस भौतिक संसार से बिल्कुल अलग है। जितना आप प्रेम बाँटेंगे उतना ही प्रेम का खजाना आपके अंदर बढ़ता जायेगा। यह खजाना भौतिक पदार्थों की भाँति कम नहीं होता। जब वह प्रेम बाँटने के मामले में कंजूस हो जाता है तो उसका हाल भी सड़े हुए पानी की भाँति ही हो जाता है।

अधिकतम आप को वे व्यक्ति जीवन से हताश व उदास मिलेंगे जो प्रेम बाँटने की कला को भूल चुके होते हैं या फिर जिन्होंने अपना प्रेम कुछ चुनिंदा व्यक्तियों के लिये ही रखा होता है । याद रखें ! प्रेम उसी को मिलता है जो प्रेम देना जानता है । जो प्रेम देना नहीं जानता व सदा पाने की इच्छा रखता है वह सब कुछ होने के बावजूद भी दुःखी रहता है । जैसे अंजुम रहवर लिखते हैं–

प्यार मिलता है प्यार से अंजुम ।

प्यार खैरात में नहीं मिलता । ।

हम देखते हैं कि मोह व ईर्ष्या प्रेम के सब से बड़े शत्रु हैं । प्रेम मानव के जीने के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि वायु व जल । परन्तु मानव अज्ञानवश यही चाहता है कि उसे लोग प्रेम करें जब कि आवश्यक यह है कि वह प्रेम दूसरों को दे जब हम दूसरों को प्रेम देना आरम्भ करेंगे तो हमें प्रेम स्वयं मिलना आरम्भ हो जायेगा परन्तु हमारा प्रेम निस्वार्थ होना चाहिये । यदि हमारा प्रेम स्वार्थ से भरपूर है तो यह स्वाभाविक नहीं है ।

यह कहा जाता है कि सब गुण एक ओर और प्रेम का गुण एक ओर । यदि हम यह गुण अपना लें तो इस हृदय में आत्मा के साथ परमात्मा का स्वरूप साथ दिखाई देगा । जब प्रेम की सृष्टि बढ़ेगी तो घृणा स्वयं समाप्त हो जायेगी । संसार के प्रत्येक व्यक्ति में गुण दोष होते हैं । यदि अपनत्व पैदा करना है तो दूसरों के दोषों को न देखकर उसके गुणों की प्रशंसा करनी होगी तभी प्रेम को स्थान मिलेगा जैसे गाय अपने बछड़े की ओर बढ़ती है वैसे आप भी अगर अपने आसपास के लोगों की ओर बढ़ें तो सभी द्वेष दूर हो सकते हैं और आपस में प्रेम पैदा हो सकता है । प्रेम बिल्कुल निष्कपट निस्वार्थ भाव से सम्पूर्ण समर्पण के साथ करना चाहिये । प्रेम में कभी कहीं कोई भी स्वार्थ की भावना न हो क्योंकि प्रेम कोई व्यापार या विनिमय की वस्तु नहीं है । प्रेम करने के लिये 'मैं' और 'मेरे' की भावना समाप्त करके 'हम' और 'हमारे' की भावना उत्पन्न करें । जैसे बाइबल में लिखा है–

जहाँ प्रेम है
वहाँ सूखी रोटी भी मीठी लगती है।
पर जिस घर में घृणा का वास है,
वहाँ अच्छे से अच्छा भोजन भी त्याज्य है। -नीतिवचन

यहाँ तक कि प्रभु भी आपका प्रेम ही चाहते हैं, उनको आपका चढ़ावा नहीं चाहिये। उनके यहाँ क्या लड्डुओं और चढ़ावों की कमी है? क्योंकि प्रभु पूर्णकाम है। वे ही तो आपको लड्डू देते हैं। उन्होंने ही संसार का निर्माण किया है। आप संसार के निर्माता को क्या चढ़ाओगे? वस्तुतः आप उन्हीं की वस्तुओं को उन्हीं के चरणों में समर्पित करते हो। उन्हें ये सब नहीं चाहिये। सम्पूर्ण समर्पण, प्राणियों से प्रेम, स्वयं के हृदय में प्रभु के प्रति प्रेम, दया, उदारता की प्रार्थना ही प्रभु प्रेम व भक्ति है। जैसाकि ऋग्वेद में लिखा है–

ओ३म् सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।। –ऋ.10.191.2
प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम, कर्त्तव्य के मानी बनो।।

हे मनुष्यो! तुम परस्पर मिलकर चलो, मिलकर बातचीत करो, ज्ञानी बनकर तुम अपने मनों को भी एक बनाओ जैसे कि तुमसे पूर्व विद्वान् देवपुरुष सम्यक् ज्ञानवान् और एक मति वाले होकर अपना भाग प्राप्त करते रहे हैं।

इसके विषय में मैं आपकी सेवा में स्वामी विवेकानंद जी के जीवन के निश्छल प्रेम का एक प्रेरक प्रसंग प्रस्तुत करना चाहता हूँ–

विश्व भ्रमण करते-करते स्वामी विवेकानंद जी चीन पहुँचे। चीन में उन दिनों कुछ शहरों को छोड़कर शेष स्थानों में विदेशियों के प्रवेश पर रोक लगा रखी थी। यदि कोई विदेशी यात्री कभी भूल से वहाँ पहुँच जाता तो चीनी मरने-मारने पर उतारू हो जाते थे और उसकी जान संकट में पड़ जाती थी। इसी प्रकार स्वामी विवेकानंद जी जब चीन भ्रमण कर रहे थे तो उनकी किसी

ग्राम में भ्रमण करने की इच्छा हुई । इसके अतिरिक्त दो जर्मन पर्यटकों की इच्छा वहाँ का ग्राम्य जीवन देखने की थी । परन्तु साहस के अभाव के कारण उनकी वहाँ प्रवेश करने की हिम्मत नहीं हो रही थी । उन्होंने यह बात स्वामी विवेकानंद जी से कही तो उन्होंने कहा–

सारी मानव जाति एक है । हमें विश्वास है कि यदि हम सच्चे हृदय से वहाँ के लोगों से मिलने चले तो वे हमें मारने की अपेक्षा प्रेम से ही मिलेंगे ।

स्वामी विवेकानंद जी जर्मन पर्यटकों को लेकर ग्राम की ओर चल पड़े । दुभाषिया इसके लिये तैयार नहीं हो रहा था । जब स्वामी विवेकानंद जी नहीं रुके तो वह भी उनके साथ चला तो गया परन्तु अंत तक उसे यही भय बना रहा कि वे लोग उन्हें मार देंगे । ग्राम वाले विदेशियों को देखकर लाठी लेकर मारने दौड़े । परन्तु स्वामी विवेकानंद जी ने उनकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि डालते हुए कहा–

क्या आप लोग अपने भाइयों से प्रेम नहीं करते ? दुभाषिये ने यही बात उनकी भाषा में पूछी तो वे बेचारे बड़े लज्जित हुए और लाठियां फैंक कर स्वामी विवेकानंद जी के स्वागत-सत्कार में जुट गये ।

यह देखकर जर्मन पर्यटक बोले–

यदि आप जैसा निश्छल प्रेम सारे संसार के लोगों में हो जाए तो धरती पर कहीं भी कलह न रह जाये ।

प्रेम का रिश्ता खून के रिश्ते से भी बड़ा होता है । संबंधों की कड़ी प्रेम से होती है । प्रेम लुटाने से मिलता है । जैसे यदि आप किसी कुएं की मुंडेर पर जाकर आवाज़ दोगे कि मैं आपसे प्रेम करता हूँ तो कई गुणा आवाज़ लौटकर आपको आयेगी । इसके विपरीत यदि आवाज़ दोगे कि मैं आपसे घृणा करता हूँ तो कई गुणा वही आवाज़ लौट कर आपको आयेगी । अतः अपने घर में नमक मिर्च की डिब्बियां रखिये और साथ में एक खाली डिब्बी में ''प्रेम'' लिखकर रखिये । एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

प्रेम वीराने को गुलिस्थान बना देता है ।
प्रेम परिचय को पहचान बना देता है ।
मैं आप बीती कहता हूँ, औरों की नहीं ।
प्रेम इन्सान को भगवान् बना देता है । ।

अतः जिस हृदय में प्रेम नहीं वह धड़कन तो रखता है, परन्तु हृदय कहलाने का अधिकारी नहीं । जिस हृदय में प्रेम नहीं वह पत्थर के समान होता है । ऐसा हृदय एक अंधकारपूर्ण गुफा के समान है, जिसमें प्रकाश का प्रवेश नहीं है । प्रेम और विश्वास का बहुत घनिष्ट संबंध होता है । प्रेम और संदेह की घोर शत्रुता होती है । जहाँ प्रेम है वहाँ संदेह नहीं, जहाँ संदेह है वहाँ प्रेम नहीं टिकता । प्रेम की आधारशिला दृढ़ता है, शिथिलता नहीं । प्रेम में स्वयं कोमलता पाई जाती है । परन्तु वह कठोरता पर सदा विजय प्राप्त करता है । आत्मा की सच्ची वृद्धि का यदि कोई कारण है तो प्रेम । प्रेम अनन्यता का पोषक होता है उसमें अन्यता का कोई स्थान नहीं । जब हृदय में प्रेम झरना बहने लगता है तो मानो व्यक्ति के हृदय में ईश्वरीय प्रेरणा काम कर रही होती है । सच्चे प्रेम में वासना का कोई स्थान नहीं होता । प्रिय का अर्थ है सरसता और रसमयता । प्रेम सदाबहार है, प्रेम के राज्य में शिशिर ऋतु का समावेश नहीं है । हम जानते हैं कि पारसमणि के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है, इसी प्रकार प्रेम के स्पर्श से राक्षस में भी देवत्व का संचार हो जाता है ।

हम देखते हैं कि संसार में प्रेम के अनेक रूप हैं । जैसे प्रभु-प्रेम, मानव-प्रेम, राष्ट्रप्रेम, धनप्रेम, भूमिप्रेम, संतानप्रेम आदि । प्रभु-प्रेम के निम्नलिखित उदाहरण देखिए–

समाया है जब से तू नज़रों में मेरी ।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है । ।

इसी प्रकार रहीम ने भी लिखा है–

ज्यों तिरिया पीहर बसे, सुरत रहे प्रिय माँही ।
तैसे नर जग में रहे, हरि को बिसरे नाँही । ।

जिन्हें प्रभु से सच्चा प्रेम होता है उनका ध्यान हर समय प्रभु की ओर ही रहता है। इसके विषय में महाराजा जनक के जीवन की एक घटना उल्लेखनीय है –

शुकदेवजी ने अपने पिताजी से ब्रह्म को जानने की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने कहा कि तुम मिथिलापुरी में राजा जनक के यहाँ जाकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करो। ब्रह्मचारी शुकदेव, महाराजा जनक के यहाँ पहुँचे तो राजा दरबार में बैठे हुए थे और अपने राजकार्य में व्यस्त थे। शुकदेव ने यह देखा तो बहुत चकित हुए। सोचने लगे कि राजकाज में फंसा हुआ व्यक्ति ब्रह्मज्ञानी कैसे हो सकता है? इन्हें भला क्या ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ होगा? महाराज जनक शुकदेव की इस भावना को ताड़ गये। वे अपने एक कर्मचारी से कहने लगे कि शुकदेव को हमारी मिथिलापुरी दिखाओ, परन्तु तेल का एक प्याला इनके हाथ में दे दो। पीछे नंगी तलवार लेकर एक व्यक्ति चलता रहे। यदि प्याले में से तेल की एक बूंद भी नीचे गिर जाए तो शुकदेव का सिर धड़ से अलग कर देना।

शुकदेव को सारे नगर में घुमाया गया। भ्रमण की समाप्ति पर दरबार में लाये जाने पर राजा ने शुकदेव से पूछा कि 'हमारी नगरी बहुत सुन्दर नगरी है, तुमने इस नगरी में क्या-क्या देखा?'

शुकदेव जी कहने लगे कि ''मैंने तो कुछ नहीं देखा। मेरा ध्यान तो तेल के प्याले की ओर केन्द्रित रहा कि कहीं इससे तेल की एक बूंद नीचे न गिर जाये।''

महाराजा जनक चुप हो गये।

रात्रि को जब सोने का समय आया तो शुकदेवजी को उस कमरे में सुलाया गया जिस कमरे की छत से, पलंग के ऊपर, एक धागे के साथ नंगी तलवार लटक रही थी। प्रातःकाल जब शुकदेव उठे तो राजा जनक ने पूछा कि 'रात्रि को तुमने सुखपूर्ण निद्रा का उपभोग किया होगा?'

शुकदेव कहने लगे कि ''मुझे तो रातभर नींद ही नहीं आई। मेरा ध्यान

तो लटकती हुई तलवार की ओर ही रहा कि कहीं यह मुझपर गिर न पड़े ।''

महाराजा जनक कहने लगे कि ''शुकदेव ! जब तुम दरबार में आये थे तो तुम्हारे मन में शंका हुई थी कि यह राजदरबारी व्यक्ति क्या ब्रह्मज्ञानी हो सकता है ? इसी शंका के निवारण के लिये मैंने तुम्हें दो स्थितियों में डाला । जैसे नगर में घूमते समय तुम्हारा ध्यान तेल के प्याले की बूंद की ओर था जैसे रात्रि में तुम्हारा ध्यान नंगी तलवार की ओर रहा वैसे ही मेरा ध्यान संसार के सब काम करते हुए ईश्वर की ओर रहता है ।''

सच्चे प्रभु भक्तों को ईश्वर से बढ़कर और किसी वस्तु से प्रेम नहीं होता । संसार के लोग शरीर से बहुत प्रेम करते हैं, परन्तु प्रभु भक्तों के लिए प्रभु-प्रेम के आगे शरीर प्रेम तुच्छ होता है । सांसारिकों की दृष्टि में पति-पत्नी प्रेम बहुत बड़ी वस्तु है, परन्तु भक्तों की दृष्टि में प्रभु-प्रेम के आगे यह भी नगण्य होता है । उनकी दृष्टि में भूमि, सम्पत्ति, धन और पद के प्रति प्रेम भी प्रभु-प्रेम के आगे तुच्छ होता है । लोगों को अपनी सन्तान से बहुत प्रेम होता है, परन्तु प्रभु भक्तों के आगे सन्तान-प्रेम भी हेय होता है ।

जिस प्रकार भूखे को भोजन की तीव्र इच्छा होती है उसी प्रकार प्रभुभक्त को प्रभु प्राप्ति की तीव्र इच्छा होती है । जैसे प्यासे को जल की उत्कट इच्छा होती है, वैसे ही प्रभुभक्त को प्रभुप्राप्ति की उत्कट इच्छा होती है । जैसे आसक्त व्यक्ति को प्रियतमा की प्राप्ति की प्रबल इच्छा होती है वैसे प्रभु भक्त को प्रभुप्राप्ति की प्रबल इच्छा होती है ।

कामी की दृष्टि नारी के अंग-प्रत्यंग में उलझी रहती है । कच और कुच में उसकी बहुत आसक्ति होती है, परन्तु प्रभुभक्त के लिए ये सब निस्सार हैं । जैसे भर्तृहरि ने लिखा है–

स्तनौ मांसग्रन्थी कनक लशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धिजघन्
महो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ।। –वैराग्य शतकम्-18

भर्तृहरि कामिनी की निन्दा करते हुए कहते हैं—वक्षस्थल पर रहने वाले ये दोनों कुच (स्तन) तो मांस की गांठें हैं परन्तु कवियों ने उनकी उपमा स्वर्ण-कलश से दी है। मुख कफ और थूक का स्थान है परन्तु उसे चन्द्रमा की उपमा दी गई। बहने वाले मूत्र से भीगे जघनों को हाथी की सूंड से उपमित किया गया। आश्चर्य की बात है कि कुछ विशेष कवियों ने अत्यंत निन्दनीय कामिनी के रूप को इतना क्यों बढ़ाया चढ़ाया है।

अतः प्रभुभक्त के आगे धन का आकर्षण भी तुच्छ होता है। उनके लिये अर्थ अनर्थ व व्यर्थ होता है। सोना, चांदी, हीरे जवाहरात मोती आदि उनके लिए पत्थर व मिट्टी के ढेले के समान होते हैं। सच्चे प्रभु भक्त शरीर, पत्नी और सन्तान के मोह बन्धनों से भी ऊपर होते हैं। वे अभिमान का भी मर्दन करते हैं। एक अंग्रेज़ी लेखक ने इस विषय में कितना सुन्दर लिखा है—

घृणा, घृणा से समाप्त नहीं होती, इस पर प्रेम से विजय प्राप्त की जा सकती है। संसार को प्रेम करना सिखाओ और स्वर्ग अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ यही प्रकट हो जायेगा। प्रेम न करना मृत्यु के समान है। जो व्यक्ति सबसे प्रेम करता है, उसका जीवन पूर्ण है और उसके सौंन्दर्य व शक्ति में वृद्धि होती रहती है।

8. दान

जो है मंजूर धन रक्षा तो धनवानों बनो दानी ।
कुएँ से जल न निकलेगा तो सड़ जायेगा सब पानी ।
येषां न विद्या, न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मं ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ।।

– भर्तृहरि शतक (नीति शतक 12)

जिनमें विद्या, तप, दान, गुण, धर्म आदि दिव्यभाव नहीं हैं, वे लोग इस पृथ्वी पर भार हैं और मनुष्य की आकृति में पशुवत् विचरण करते हैं । ऐसे लोगों के लिये शास्त्र में कोई प्रयोजन नहीं ।

दान का अर्थ है कि जो कुछ अपना अंश है उसे त्यागकर, उस पर दूसरे का अधिकार प्रतिष्ठित कर देना । उसके बाद उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं रह जाता । अपितु जिसको दिया गया है, वह अधिकारी बन जाता है । हिन्दू इसको दान, मुसलमान जकात, सिख दसवत और ईसाई Tithing कहते हैं । अच्छा दान वह है जो जरूरतमंदों को दिया जाता है । कुपात्रों को दान देना व्यर्थ है । जिसका पेट भरा हो उसे और भोजन कराया जाये तो वह बीमार पड़ेगा और अपने दाता को पतन की ओर ले जायेगा । भारतीय संस्कृति के अनुसार दान देना अत्यंत उत्तम कर्म है । क्योंकि इससे आत्मिक विकास होता है । परन्तु निर्धन व्यक्ति को धन देने से काम नहीं चलता । उसे निर्धनता के जंजाल से मुक्ति दिलवाने के लिए किसी व्यवसाय में लगा देना चाहिये ताकि वह अपनी रोज़ी-रोटी कमा सके । परन्तु जो व्यक्ति अपाहिज है जैसे अंधे, लूले लंगड़े, गूंगे, बहरे भी कोई न कोई कारोबार करके अपने जीवन की गाड़ी चला सकते हैं । यदि ऐसे व्यक्तियों को शिक्षित कर दिया जाये तो वह अध्यापक का कार्य करके भी अपनी आजीविका कमा सकते हैं । आप का दान कुपात्रों के पास न चला जाये इसलिए दान में विवेक की आवश्यकता है । रहीम खानखाना ने दान की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–

पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम ।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ।।

श्री मुनि तरुणसागर जी लिखते हैं–

एक दिन महावीर से गौतम ने पूछा–भत्ते ! दान देना ठीक है या संग्रह करना । महावीर ने अपनी एक हाथ की मुट्ठी बंद की और गौतम से पूछा–यदि यह हाथ सदा ऐसा ही रहे तो क्या होगा ? गौतम ने कहा अकड़ कर निकम्मा हो जायेगा । फिर महावीर ने मुट्ठी को खोलकर पूछा और यदि हथेली को हमेशा यों रखा जाए तो क्या होगा ? तब भी हाथ अकड़कर बेकार हो जाएगा । महावीर बोले–गौतम ! ज़िन्दगी में मुट्ठी बांधना भी जरूरी है और खोलना भी ज़रूरी है । अर्जन के साथ विसर्जन जरूरी है । खाया हुआ तो बेकार हो जायेगा लेकिन दिया हुआ बेकार नहीं जायेगा ।

–कड़वे प्रवचन (भाग 2 पृ० 144)

याद रखो ! व्यक्ति अपना सर्वस्वदान कर सकता है परन्तु यश का दान कर पाना संभव नहीं है क्योंकि यश ही व्यक्ति की वास्तविक सम्पत्ति होती है । व्यक्तित्व का फैलाव यश है । यश तो मृत्यु के बाद भी व्यक्ति को जीवित रखता है । राम और कृष्ण का यश ही तो आज उन्हें जीवित रखे हुये हैं । यश रावण को भी जीवित रखे हुए है । जो भी अपने-अपने क्षेत्र में अपवाद बन जाता है उसी का यश फैलता है ।

दान के विभिन्न प्रकार

1. समय दान – जब जिस विपत्ति का अत्यधिक प्रकोप हो, तब उसके निराकरण का उपाय ही सर्वश्रेष्ठ दान कहलाता है । जैसे प्यासे व्यक्ति को पानी, भूखे व्यक्ति को रोटी, अग्निकांड का शमन करने के लिए जल, बाढ़ की चपेट से घिरों को नाव, दुर्घटना ग्रस्तों को चिकित्सा जैसे साधनों की आवश्यकता होती है । अतः समय दान को सर्वश्रेष्ठ दान इसलिये माना गया है क्योंकि गुजरा हुआ समय किसी भी कीमत पर वापस नहीं आ सकता । आज तक कोई भी व्यक्ति इतना अमर नहीं हुआ है जो समय को वापस ला

सके । खोया हुआ धन फिर भी परिश्रम से कमाया जा सकता है । परन्तु समय कभी भी वापस नहीं आ सकता है । अतः समय एवं समर्पण का दान धन से भी श्रेष्ठ है ।

2. ज्ञानदान (विद्यादान) –पहले ज्ञान पीछे काम । यदि व्यक्ति बुद्धिमान होगा तो धन कमा भी सकता है और उसका सदुपयोग भी कर सकता है ।

3. औषधिदान – किसी निर्धन रोगी को दवाइयाँ लेकर दान करना या उसका इलाज करवा देना भी दान है ताकि वह निरोग होकर अपनी रोजी रोटी कमा सके ।

4. रक्तदान – यह भी एक प्रकार का महान् दान है । जब कोई व्यक्ति रक्त दान करता है तो उसको कोई हानि नहीं होती क्योंकि कुछ आयु की सीमा तक 3 महीने के पश्चात् फिर रक्त बन जाता है । आवश्यकता पड़ने पर किसी रोगी की इससे जान बच जाती है । दान के बारे में मुनि तरुण सागर जी लिखते हैं–

> **कई तरह के दान में एक रक्तदान भी है । रक्तदान पुण्य कार्य है । खून देने से कम नहीं होता, फिर बढ़ जाता है । ठीक वैसे ही जैसे हम बाल काटते हैं और फिर बढ़ जाते हैं, हम नाखून काटते हैं और फिर बढ़ जाते हैं । कुँए से पानी निकालते हैं और फिर बढ़ जाता है । खून देने से तुम्हारा तो कुछ घटता नहीं है । हाँ, किसी मरते हुए को ज़िन्दगी जरूर मिल जाती है । और फिर यह भी सच है कि देह में अनुरक्त है वह रक्त कैसे दे सकता है? रक्त पानी बने, इससे पहले उससे किसी की जिन्दगी बचा दो । नदी का पानी सागर में जाकर खारा हो–इससे पहले इसे खेतों में पहुँचा दो । याद रखें–जीते जी रक्तदान, जाते-जाते देहदान और जाने के बाद नेत्रदान ।**
>
> –कड़वे प्रवचन 3 पृ० 37

5. आत्मदान – अपनी सब वस्तुओं को परमात्मा की वस्तुएं मानकर दास की भाँति उनका प्रयोग करना ही आत्म दान है । ऐसा करने से व्यक्ति में पाँच विकार समाप्त हो जाते हैं । जब अपना कुछ नहीं, तो अभिमान किस बात का । आत्मदान करने से अहंकार का दान हो जाता है और ओंकार का उदय होता है जैसे बच्चा अपना सारा उत्तरदायित्व माता-पिता पर छोड़ देता है

उसी प्रकार आत्मदान करने वाले व्यक्ति का उत्तरदायित्व भी परमात्मा पर चला जाता है । अतः आचार्य श्रीरामशर्मा लिखते हैं–

राम को राज्य का अधिकारी मानकर उनकी खड़ाऊँ सिंहासन पर रखकर जैसे भरत राजकाज चलाते रहे, वैसे ही आत्मदानी अपनी वस्तुओं का समर्पण करके उनके व्यवस्थापक के रूप में स्वयं काम करता रहता है ।

–गायत्री महाविज्ञान पृ० 405

6. भोजनदान – किसी भूखे व्यक्ति को भोजन खिलाना एक महान् दान है ।

7. धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं को दान – किसी भी धार्मिक एवं सामाजिक संस्था जैसे मंदिर, आर्यसमाज, गुरुद्वारा, चर्च, बाल निकेतन, अपाहिज आश्रम, अंध महाविद्यालय, सेवा भारती को दान देना भी उत्तम दान है, यदि इस दान से दुःखी, पीड़ित, असहाय मानवता की सेवा होती है ।

8. जरूरतमंद आदमी को दान देना – कई व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हें बुढ़ापे में उनको कोई भी नहीं पूछता । न ही उनके पास जीवनयापन के लिए धन होता है । ऐसे व्यक्ति भी दान के लिये सुपात्र हैं ।

वस्तुतः अन्न, जल और औषध इनको देने में पात्र, कुपात्र आदि का विचार नहीं करना चाहिए । जिसको इनकी आवश्यकता है वही पात्र हैं । इनको देने में यदि हम पात्र, कुपात्र पर विचार करेंगे तो स्वयं कुपात्र बन जायेंगे और दान देना कठिन हो जायेगा ।

9. भूमिदान – किसी धार्मिक संस्था और सामाजिक संस्था को भूमिदान भी अच्छा दान है ताकि वह संस्था वहाँ निष्कामभाव से मानवता की सेवा कर सके ।

10. क्षमादान – किसी अपराधी व अपशब्द बोलने वाले को क्षमा करना भी क्षमादान है ।

मानव के लिये दान की महत्ता के विषय में एक शिक्षाप्रद कथा इस प्रकार प्रस्तुत की जाती है ।

प्रजापति के पास एक बार देवता, मनुष्य एवं असुर तीनों एकत्रित होकर गये । प्रजापति ने पूछा–''कहो भाई! कैसे आना हुआ? उन्होंने कहा–''हम उपदेश लेने आये हैं ।''

प्रजापति ने कहा—''अच्छी बात है, परन्तु मैं उपदेश दूँगा उस अवस्था में जब तुम 30 वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करके मेरे पास आओगे ।

30 वर्ष तक देवता, मनुष्य और असुर ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे । 30 वर्ष के बाद फिर प्रजापति के पास गये ।

प्रजापति ने पूछा—क्यों भाई मेरी आज्ञा का पालन हुआ ? सभी ने कहा, जी हाँ, हुआ ।

प्रजापति ने कहा—''अच्छी बात है । आगे बढ़ो और सुनो मेरा उपदेश ।''

सर्वप्रथम देवता आगे बढ़े—प्रजापति ने ऊँची आवाज़ में कहा ''द'' और मौन हो गये ।

प्रजापति ने पूछा—''क्यों भाई देवताओं तुमने मेरे उपदेश का अर्थ समझा ?''

देवताओं ने कहा—''जी महाराज ! आपने कहा—''द'' अर्थात् दमन करो । आपने हमें दमन करने अर्थात् इन्द्रियों को वश में रखने का आदेश दिया है ।

प्रजापति बोले—''ठीक समझे हो तुम ! यही तुम्हें करना है । यही करने से तुम्हारा कल्याण होगा ।''

तब मनुष्य आगे बढ़े । प्रजापति ने उनकी ओर देखते हुए कहा—''द'' और चुप हो गये ।

मनुष्यों ने कहा—''धन्य हो प्रजापति ! आपका उपदेश बहुत उत्तम है ।''

प्रजापति ने पूछा—''क्या है मेरा उपदेश ?''

मनुष्यों ने कहा—''आप का उपदेश है ''द'' अर्थात् दान ! आपने हमें दान देने का उपदेश दिया है ।''

प्रजापति बोले—''ठीक समझे हो तुम ! जाओ ! दान देने में ही मनुष्य का कल्याण है । अब दूसरों को आगे आने दो ।''

फिर असुर आगे बढ़े, तो प्रजापति ने पुनः कहा—''द'' और चुप हो गये । असुर हाथ जोड़कर खड़े रहे । प्रजापति ने पूछा—''क्यों भाई मेरे उपदेश का अर्थ तुमने समझा ।

असुरों ने कहा–जी महाराज! आपने हमें ''द'' अर्थात् दया का उपदेश दिया है। आपने कहा कि हम मानवता पर दया करें।

प्रजापति बोले–''ठीक समझे हो तुम! यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। इस प्रकार एक ही ''द'' अक्षर से प्रजापति ने देवताओं, मनुष्यों और असुरों तीनों को उपदेश दिया। देवताओं के लिए दमन, मनुष्यों के लिए दान और असुरों के लिए दया। एक ही अक्षर का तीनों के लिए विभिन्न अर्थ हो गया।

देव उसी समय देवता बनता है, जब अपनी इन्द्रियों का दमन करे उन्हें वश में रखे अन्यथा उसका देवत्व समाप्त हो जाता है। मनुष्य उसी समय मनुष्य बनता है जब तक वह स्वयं दया कर दूसरों को दान दे, दूसरों की रक्षा करे, दूसरों की सहायता करे, नहीं तो उसकी मानवता पशुता में बदल जायेगी। असुर सही अर्थों में उस समय असुर है, जब वह अपनी शक्ति को दूसरों पर दया करने के लिए उन्हें संकटों से बचाने के लिए और उन्हें आपत्ति में सहायता देने के लिए प्रयोग करे नहीं तो वह असुर राक्षस बन जायेगा।

विभिन्न ग्रंथों में दान के महत्व का वर्णन–

1. शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर। –अथर्व० 3.24.5

सौ हाथों से कमा और हज़ार हाथों से दान कर।

2. दत्तान्मा यूषम –अथर्व० 6.123.4

मैं दान देना कभी न छोड़ूं।

3. दानं एकं कलौ युगे। –मनुस्मृति

कलियुग में दान ही एक कल्याणकारी साधन है।

4. महाभारत में एक प्रसंग आता है–यक्ष-युधिष्ठिर संवाद।

यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा–

महाराज! जीते जी तो यहाँ सभी साथी हैं, परन्तु मरने पर मानव का कौन साथी होता है?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया–

मरने वाले का मित्र दान होता है।

वेदव्यास महाभारत में लिखते हैं–

धन रखते हुए भी दान न देने वाले मरने के बाद नरक को जाते हैं और वहाँ अनेक कष्ट भोगकर किसी निर्धन मनुष्य के घर जन्म पाते हैं ।

इसी प्रकार संत दादू दयाल जी भी लिखते हैं–

दादू दिया है भला, दिया करो दोउ हाथ ।
दीया घर में चांदना, या चाली साथ । ।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् । ।
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् । ।
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् । । –गीता 17.20-22

उसे जानकर फर्ज़ ख़ैरात (दान) दे,
जो हकदार हो जिससे ख़िदमत (सेवा) न लें ।
मुनासिब हो वक्त और हो मौजूँ मकाम (उचित देश),
सतोगुण सख़ावत (दान) इसी का है नाम । ।
हो एहसाँ (दान) से बदले की ख़्वाइश अगर,
सख़ावत (दान) में फल पर लगी हो नज़र ।
अगर बे-दिली (क्लेश पूरक) से कोई दान दे,
रजोगुण सखावत उसे जान ले । ।
अगर नामुनासिब (अनुचित) है वक्त और मकाम (देश)
उसे दान दें जिसको देना हराम ।
जो ले उसकी ज़िल्लत करें दिल दुःखायें,
तमोगुण सख़ावत उसी को बतायें । ।

दान देना ही मानव का कर्त्तव्य है ऐसे भाव से जो दान, देश तथा काल और पात्र के प्राप्त होने पर उपकार करने वाले के प्रति दिया जाता है वह दान सात्विक कहा जाता है । परन्तु जो दान क्लेशपूर्वक एवं प्रत्युपकार के उद्देश्य से या फल को दृष्टि में रखकर दिया जाता है वह दान राजस होता है ।

भागवत में दान के विषय में रतिदेव की कथा का वर्णन आता है । कथा

इस प्रकार है कि रतिदेव में त्याग एवं दान की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। मानव हो या अन्य कोई जीव, उनकी सब में समान दृष्टि थी और सब को खिलाकर ही स्वयं भोजन ग्रहण करने का उनका नियम था। जो धीरे-धीरे उनके परिवार के सभी सदस्यों की जीवनचर्या बन गया। एक बार अकाल के समय कई दिनों तक अन्न व जल, रति देव और उनके परिवार को प्राप्त नहीं हुआ। अंत में एक दिन कहीं से भंडारे में खीर, हलवा, पूड़ी तथा अन्य व्यंजन प्राप्त हुये। ज्यों ही रतिदेव परिवार सहित भोजन करने बैठे कि एक भूखा ब्राह्मण आ गया। रतिदेव ने प्रेम व श्रद्धा से ब्राह्मण को भोजन कराया और उसके जाने के बाद बच्चे भोजन को पुनः आपस में बाँटकर खाने लगे। फिर एक व्यक्ति भूख से पीड़ित होकर उनके द्वार पर आकर मांगने लगा। अतिथि तो देवता है और ब्रह्म के लिए ब्राह्मण, शूद्र व श्वान सभी समदृष्टि के अनुरूप ब्रह्म स्थित हैं। उस शूद्र अतिथि को भी प्रेम व श्रद्धापूर्वक भोजन कराया गया।

अब तीसरी बार थोड़े से बचे भोजन में से वह सपरिवार बाँटकर खाने को बैठे ही थे एक चांडाल अपने कुत्ते के साथ आ गया और कहने लगा हे रतिदेव! मैं और मेरा कुत्ता अकाल के कारण तीन दिन से भूखे हैं। हमें कुछ अन्न चाहिए अन्यथा हमारे प्राण निकल जायेंगे। अन्न बहुत थोड़ा सा बचा था, स्वयं रतिदेव अपनी पत्नी व छोटे-छोटे पुत्रों के साथ भूख से व्याकुल थे। परन्तु चांडाल व कुत्ते में भी अतिथि रूप में भगवान् को पाकर उन्होंने अपनी भूख प्यास व पीड़ा को भुलाकर सारा अन्न उन्हें दे दिया। चांडाल व कुत्ते ने वह भोजन खा लिया और चले गये। रतिदेव के पास अब केवल एक गिलास जल शेष रह गया। वह परिवार से जल को बाँटकर पीने ही वाले थे कि एक गरीब भिखारी जो भूख व प्यास से अर्द्धमूर्छित व विक्षिप्त हो रहा था उनके द्वार पर आकर गिर पड़ा। उसके मुख से वाणी नहीं निकल रही थी। होंठ सूख चुके थे, सांस अत्यंत धीमी गति से चल रही थी। उसकी ऐसी दशा देखकर रतिदेव का हृदय करुणा से भर आया और अतिथि धर्म का पालन करने के लिये उन्होंने वह अंतिम गिलास जल भी उस ग़रीब भिखारी को दे दिया। अपने को दुःख व कष्ट देकर त्याग भावना से दूसरे के कष्ट और पीड़ा मिटाने के लिये किया गया दान ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी भावना के अनुरूप रतिदेव ने अकाल में कई दिनों से भूखे होने के पश्चात् भी अपना सर्वस्व दान दे दिया।

दानवीर कर्ण प्रतिदिन सोना दान दिया करता था। परन्तु इतना दान देने के पश्चात् उसके पास भी अपना कुछ न कुछ अवश्य रह जाता था। इसलिए ही कर्ण के युद्धभूमि में गिरने के बाद कृष्ण ने अर्जुन से कहा था–

आज दानशीलता का सूर्य अस्त हो गया है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जैनमत के संस्थापक महावीर ने अपना सारा राज्य ही लोगों को दान कर दिया था। इसी प्रकार राजा हर्षवर्धन ने भी अपना राज्य भी ग़रीब लोगों को दान कर दिया और इसके बाद अपनी बहन राज्यश्री से कपड़े लेकर पहने थे। धन्य, धन्य, धन्य है वह भारतभूमि जहाँ पर इतने बड़े-बड़े दानवीर हुये हैं।

11. गुप्तदान – जब तुम दान दो तब इसका ढिंढोरा न पीटो, जैसे पाखंडी व्यक्ति सभा गृहों और गलियों में करते हैं कि लोग उनकी प्रशंसा करें। मैं तुमसे सच कहता हूँ वे अपना फल पा चुके हैं। जब तुम दान दो तब तुम्हारा यह कार्य इतना गुप्त हो कि तुम्हारा बांया हाथ भी न जाने कि दाहिना हाथ क्या कर रहा है।

तुम्हारा दान गुप्त हो, तब तुम्हारा पिता (परमपिता परमात्मा) जो गुप्त कार्य को भी देखता है तुम्हें प्रतिफल देगा। –बाइबल

दान और पुण्य एकांत में होना चाहिए, जैसे तुम स्नान सड़क या चौराहे पर नहीं वरन बंद बाथरूप में करते हो, वैसे ही दान-पुण्य गुप्त होने चाहिए। पुण्य की किसी को खबर नहीं लगने देनी चाहिए, क्योंकि पुण्य छिपाने से बढ़ता है और बताने से मरता है। पुण्य बड़ा शर्मीला है। पुण्य और दान बताकर नहीं छिपाकर करना चाहिये। तुम्हारे घर के अन्दर कूड़ा-कचरा जमा हो और उसे फेंकना हो, तो क्या तुम अख़बार में विज्ञापन करते हो?

–मुनि श्री तरुण सागर (कड़वे प्रवचन भाग-I पृ. 149)

अतः गुप्त दान ही उत्तम दान है। यह दान इसलिये श्रेष्ठ माना जाता है ताकि दानी को कही दान का अभिमान न हो जाये। परन्तु गुप्त दान से अन्य लोगों को प्रेरणा नहीं मिलती ताकि वे भी दान करें। इस कारण दान देने का सही ढंग यह है कि व्यक्ति अपनी शक्ति एवं श्रद्धा के अनुसार किसी भी जरूरतमंद और सुपात्र को दान दे परन्तु उसमें अभिमान की भावना न आये।

रहीम की सम्राट् अकबर के संरक्षण और नवरत्नों में गणना होती थी। उनकी उदारता एवं दानशीलता विख्यात है। उनको अपने काल का कर्ण कहा जाता है। गंगकवि को उनके दो छंदों पर प्रसन्न होकर रहीम ने एक बार उसे 36 लाख रुपये दे दिये थे। यह दानशीलता कवि हृदय की सच्ची प्रेरणा थी। किसी प्रलोभन या कीर्ति की कामना से कवि दूर रहता था। इतना बड़ा दान देते हुए गंगकवि ने कहा था–

सीखी कहाँ नबाब यह, ऐसी अद्भुत देन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचे उठें, त्यों नीचे नैन।।

रहीम की नम्रता देखकर इसका उत्तर इस प्रकार दिया था–

देनहार कोई और है, देत रहत दिन रैन।
लोग भरम मुझ पै करैं, याते नीचे नैन।।

अतः दान देकर व्यक्ति के हृदय में अभिमान नहीं आना चाहिये। क्योंकि जहाँ अभिमान होता है, वहाँ भगवान् नहीं होते। जहाँ ग़रूर होता है वहा हजूर नहीं होते, जहाँ तक़रार होते हैं, वहाँ कर्तार नहीं होते। जहाँ अहंकार होता है वहाँ ओंकार नहीं होते। आप अभिमान किस बात का करते हो क्योंकि आप धन में कुबेर नहीं हो, सौन्दर्य में कामदेव नहीं हो, विद्वता में बृहस्पति नहीं हो, ऐश्वर्य में इन्द्र नहीं हो और प्रतिष्ठा में गणेश नहीं हो। क्योंकि यदि दान देकर अभिमान आ गया तो आत्मिक विकास नहीं होगा। हम देखते हैं कि संसार में चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं–

(1) दौलतवंद – ये वो व्यक्ति होते हैं जो कि धन को ही सब कुछ समझते हैं और अत्यंत लोभी कंजूस होते हैं। वे न ही स्वयं उसका सदुपयोग करते हैं और न अपने प्रियजनों को करने देते हैं। अपितु सर्प की भाँति कुंडली मार कर दौलत पर बैठे रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत कम होती है।

(2) दौलतगंद – ये वे व्यक्ति होते हैं जो अत्यंत कामुक एवं विलासी होते हैं और अपने धन को व्यसनों जैसे शराब, जुआ, व्याभिचार आदि में व्यर्थ ही गँवा देते हैं। ऐसे लोगों की संख्या भी कम होती है।

(3) दौलत मंद – ये वे व्यक्ति होते हैं जो अपने धन का प्रयोग केवल अपने ही स्वार्थों की पूर्ति के लिए करते हैं जैसे अपने परिवार के पालन पोषण, शिक्षा, मकान आदि में धन को खर्च करते हैं। परोपकार के कार्य जैसे दान देना किसी जरूरतमंद की सहायता करना आदि नहीं करते। संसार में ऐसे व्यक्तियों की बहुसंख्या होती है। मैं आपको अपना व्यक्तिगत अनुभव बताता हूँ कि मेरे अनेक संबंधियों और मित्रों ने अपने मकान बेचे और खूब धन कमाया। परन्तु दुर्भाग्यवश इनमें से कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसने एक पैसा भी किसी संस्था में दान दिया हो। क्योंकि इनके खर्चे आवश्यकता से अधिक हैं और दान की प्रवृत्ति है नहीं।

इस विषय में मैं एक कहानी सुनाना चाहता हूँ। एक बार एक शहजादा किसी स्थान से गुजर रहा था और उसको बड़ी प्यास लगी वह एक कुएँ के पास जाकर बैठ गया। पास में पानी पीने के लिए बाल्टी और रस्सी भी रखी थी। परन्तु आलस्य एवं अहंकार के कारण उसने पानी नहीं पीया। इसके बाद एक व्यक्ति वहाँ पर और आ गया और वहीं पर बैठ गया उसने पहले व्यक्ति से कहा, ''कृपया आप मुझे पानी पिला दीजिए।'' उसने उत्तर दिया मैं क्यों पिलाऊँ ''क्योंकि मैं शहजादा हूँ''। इसी पर दूसरे व्यक्ति ने कहा मैं भी नवाबजादा हूँ। इस समय तीसरा व्यक्ति भी वहीं आकर बैठ गया। वहाँ पर बैठे दोनों व्यक्तियों ने कहा–हम काफी देर से यहाँ बैठे हैं। कृपया आप हमें पानी पिला दीजिए। तीसरे व्यक्ति ने कहा ''आप कौन हैं? उन्होंने उत्तर दिया हम में से एक शहजादा है और दूसरा नवाबजादा। इस प्रकार उसे उत्तर दिया ''मैं पानी आपको क्यों पिलाऊँ क्योंकि मैं अमीरजादा हूँ।

जब वे तीनों काफी देर से प्यासे बैठे हुए थे तो इतने में वहाँ पर चौथा व्यक्ति भी आ टपका और कुएँ में बाल्टी डालकर पानी ऊपर ले आया। शेष तीनों व्यक्तियों ने सोचा कि यह हमें पानी पिलायेगा परन्तु सारा पानी वह स्वयं ही पी गया। वहाँ पर बैठे तीनों ने उसको निवेदन किया कि हमें भी पानी पिला दो क्योंकि हम तीनों काफी देर से पानी के न मिलने से व्याकुल हो रहे

हैं । उसने पूछा आप कौन हैं? उन तीनों ने उत्तर दिया ''एक शहजादा है, दूसरा नवाबजादा है और तीरा अमीरजादा है । इस पर चौथे व्यक्ति ने उत्तर दिया मैं भी आपसे कम नहीं हूँ स्वयं पानी पीता हूँ और किसी को नहीं पिलाता क्योंकि मैं हरामजादा हूँ । ये शब्द कहकर वहाँ से चला गया ।''

कहने का भाव है कि संसार के अधिकतर व्यक्ति आलसी एवं स्वार्थी हैं जो कि अपने और अपने परिवार तक ही जीते हैं ।

(4) दौलतचंद – ये वे व्यक्ति होते हैं जो उचित ढंग से धन कमाते हैं अपना और अपने परिवार का पालन पोषण भी करते हैं । यथाशक्ति परोपकार कार्य के लिए दान भी करते हैं । उन्हीं का जीवन धन्य है क्योंकि वे अपने लिये भी और दूसरों के लिए भी जीते हैं । स्वामी विद्यानंद ''विदेह'' लिखते हैं–

जीवन उन्हीं का धन्य है, जीते हैं जो सबके लिये ।
धिक्कार है उनके लिए, जीते हैं जो अपने लिये । ।
जन्म होता है, सुजन का, विश्व के उद्धार को ।
विश्वसेवा, विश्वमंगल, विश्व के उपकार को । ।

एक बार एक व्यक्ति महर्षि दयानंद के पास आया और नमस्ते करके बोला–

स्वामी जी मैं आपका अनन्य भक्त हूँ । मैं अपनी दुकान बेचकर 10,000 रुपये ले आया हूँ । मैं यह धन आर्यसमाज को दान देना चाहता हूँ ताकि आर्यसमाज का भव्य भवन बन सके ।

महर्षि दयानन्द ने पूछा – आपका परिवार कितना बड़ा है?

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया – मेरी धर्मपत्नी है दो बच्चे हैं । कमाने वाला मैं हूँ । दुकान ही मेरी आय का स्रोत है ।

महर्षि दयानन्द ने उत्तर दिया – भले मानस, दुकान बेचकर मिलने वाले धन को दान करके आपकी गृहस्थी का भार कौन वहन करेगा? यह गृहस्थ धर्म के प्रति अन्याय होगा । तुम दान धर्म का निर्वाह करने के लिये गृहस्थ धर्म को दांव पर लगाओगे तो धर्म का निर्वाह कैसे होगा? मैं तुम्हारी भावना का आदर करता हूँ । मैं आपसे 10,000 रुपये दान नहीं ले सकता

हूँ। तुमसे केवल 1000 रुपये दान लिया जा सकता है। शेष 9000 रुपयों का उपयोग समझबूझ से करके नया व्यापार कीजिए?

उसी प्रकार महाकवि सूर्यकान्त निराला को अपनी रचनाएं लिखने के लिये कुछ धन मिला।

उस समय सामने एक कृशकाय वृद्धा भीख मांग रही थी, उनका बाल सदृश हृदय पसीज गया। वह उस वृद्धा के पास गये और बोले–

माता, यदि मैं आपको 20 रुपये दे दूँ तो आप कितने दिन भीख मांगना छोड़कर घर में सुख आराम से गुजारा कर सकोगी? वृद्धा ने उत्तर दिया–बेटा चार दिन तक।

महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने गणित फैलाया यदि मैं जेब के सारे रुपये इसको दे दूँ तो शेष आयु इसको भीख मांगने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उन्होंने सारी राशि उस वृद्धा को दी और सुखी मन से अपने घर की ओर चले गये। ऐसे थे दानशील और उदारवादी महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराली।

आधुनिक काल में भी बड़े-बड़े दानी हुये जैसे एंड्रयू कार्नेमी (1835 ई. से 1919 ई.) जोकि अपने काल के बहुत बड़े अमेरिकी इस्पात उद्योगपति थे। उन्होंने विभिन्न नेक कामों के लिए 35 करोड़ डॉलर दान दिये थे और विशेष तौर पर ग़रीब लोगों की सहायता की। मनु श्री तरुण सागर लिखते हैं–

खा गया, सो खो गया, गाड़ गया, झकमार गया।
जोड़ गया, फिर फोड़ गया और दे गया, सो ले गया।। –माँ. पृ. 14

इसी प्रकार बिलगेट जो कि आधुनिक काल के अत्यधिक धनी व्यक्ति हें ने भारत को 2500 करोड़ रुपया दान दिया था।

निष्कर्षतः इतना ही कहना काफी होगा कि सारे धार्मिक ग्रंथों ने दान महिमा का गुणगान किया है। परन्तु फिर भी बहुत कम व्यक्ति दान देते हैं। लाला साईंदास जोकि लाहौर आर्य समाज के प्रथम प्रधान थे। आर्यसमाज को अपनी आय का 10 प्रतिशत दान देते थे और हमारे भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री

लाल बहादुर शास्त्री अपनी आय का 10 प्रतिशत दान Peope Society of India को दिया करते थे । यहाँ तक कि स्वामी विद्यानंद 'विदेह' जो कि आर्य जगत् के महान् वैदिक वक्ता थे, उनका कोई भी बैंक अकाउंट नहीं था और वे सारी पेंशन दान कर देते थे । वे लिखते हैं–

पेंशन मेरी लगभग सारी की सारी दान में चली जाती हैं । ज्यादातर विद्यार्थियों की मदद करने में ही जाती है । –विदेह वाणी (दाम्पत्य जीवन)

अज़ीम प्रेम जी ने जोकि कम्पनी विप्रो के संस्थापक हैं, ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिये 27,514 करोड़ रुपये का दान देकर देश के सब से बड़े दानी बन गये । रिपोर्ट में कहा गया है कि अजीम प्रेम जी द्वारा स्थापित फाऊंडेशन देश में शिक्षा के विकास के उद्देश्य से 8 राज्यों के 35,000 स्कूलों के लिए काम कर रहे हैं ।

धन की तीन गतियाँ होती हैं–दान, भोग, नाश इसलिये हमें अपनी शक्ति व श्रद्धा के अनुसार जरूरतमंद एवं सुपात्र को अवश्य कुछ न कुछ दान करना चाहिये । जैसे–तुलसीदास ने कहा है–

तरुवर फले न आपको, नदी न पीवे नीर ।
परमार्थ के कारणे, सन्तन धरा शरीर । ।
चिड़िया चोंच भर ले गई, नदी न घटियो नीर ।
दान दिये धन ना घटे, कह गये भक्त कबीर । –कबीर

ईश्वर से बड़ा दानी कोई नहीं–

ईश्वर से बड़ा दानी कोई नहीं, प्रकृति दे रखी दान में सारी ।
हम इसको समझ ना पाये, मति मारी गई प्रभु हमारी । ।

–लालचन्द चौहान

9. नारी

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष-स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में । ।

(–जयशंकरप्रसाद कामायनी, लज्जा सर्ग)

लज्जा श्रद्धा से कहती है कि हे भोली भाली नारी ! तुम तो प्रेम, विश्वास, ममता और दया की साक्षात् प्रतिमा हो । अतः तुम्हारा कर्तव्य है कि जिस प्रकार चांदी के समान बर्फीली चोटियों से निकलने वाली कोई अमृत के समान मीठे जल वाली नदी पर्वत के सहारे ही बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ती है और अपनी तलहटी में निवास करने वाले सभी लोगों को सुख प्रदान करती हुई प्रसन्नता के साथ बहती चली जाती है । उसी प्रकार तुम भी मनु पर विश्वास करो और उसके आश्रय में रह कर अपने कार्यों द्वारा अपने तथा मनु के जीवन में सुख, प्रसन्नता से परिपूर्ण करके उसे सुन्दर व समतल बना दो । अर्थात् अपने त्याग, तपस्या, ममता, दया और प्रेम से मनु के जीवन को आनन्दमय बना दो ।

मुक्त करो नारी को मानव, चिर वंदिनी नारी को ।
युगु-युग की निर्मम कारा से, जननी सभी की प्यारी को । ।

–सुमित्रानंदन पंत

नारी शब्द न+अरि से बनता है जिसका अर्थ है नारी पुरुष की शत्रु नहीं अपितु मित्र है । इसी प्रकार नारी के लिये महिला शब्द का भी प्रयोग किया जाता है इसका शाब्दिक अर्थ है म = ममता, हि = हितकारी, ला = लाज । इन तीनों गुणों से युक्त प्राणी को महिला कहा जाता है । यदि उसमें ये तीनों गुण नहीं है तो वह नारी न होकर कुनारी है ।

(1) वैदिककाल में नारी की स्थिति

वेद मानव जीवन की चहुंमुखी उन्नति का सोपान है । मानव जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं जिस पर वेद में मार्गदर्शन न किया हो । नारी विधाता की सबसे विलक्षण कृति और सर्वोत्तम सृष्टि है । यह समाज, नगर और राष्ट्र की आधार है । यह समस्त मानवीय सृष्टि की निर्मात्री ही नहीं बल्कि अपने ममतामय पवित्र आँचल की छाँव में मानव को पहचान भी देती है । अपनी मधुर लोरियों के द्वारा शिक्षा, संस्कार, अपनी सूझबूझ, दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता,

धैर्य आदि गुणों से उसके भविष्य को बनाकर समस्त संसार को स्वर्गमय बनाने का महान् सामर्थ्य अपने भीतर धारण करती है। उस महान् नारी जाति के बारे में वेद अत्युत्कृष्ट उपदेश देता है। इसीलिए ऋग्वेद में कहा गया है—

त्वे विश्वा सरस्वति, श्रितायूंषि देव्याम्।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः।। ऋ० 2-41-17

नारी की प्राथमिक भूमिका परिवार निर्माण की है। परिवार में वह आदर्श पुत्री, आदर्श बहिन, आदर्श पत्नी, आदर्श गृहिणी, आदर्श माँ के रूप में वर्णित है।

सरस्वती साधयन्ती धियं न इडा देवी भारती विश्वतूर्तिः।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तुं शरणं निषद्य।। ऋ० 2-3-8

एक माता, दूसरी पढ़ाने वाली और तीसरी उपदेश करने वाली स्त्री, कन्याओं को सदा समीप में सेवनी चाहिए जिससे बुद्धि और विद्या नित्य बढ़ें।

उषा आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्ठिषु। ऋ० 1-48-9

जैसे उषा स्थूल और सूक्ष्म दोनों तरह की वस्तुओं को प्रकाशित करती है वैसे विदुषी धार्मिक कन्या माता-पिता और सास-ससुर दोनों के कुलों को उज्ज्वल करती है। एक सुशिक्षित सुसंस्कृत कन्या पति कुल को भी प्रशंसित बना देती है। सुकन्याओं का निर्माण गृहस्थ जीवन की अनुपम सफलता है।

वेदों में नारी को (सिनीवाली) अन्नपूर्णा बताया गया है। वह गृहस्थाश्रम में अपनी सूझबूझ, गृहकुशलता और मितव्ययता से ऐश्वर्य की वृद्धि करती है। अतः वह अन्नपूर्णा कहलाती है। सिन का अर्थ अन्न है क्योंकि वह प्राणियों को बांधता है। वाल का अर्थ उत्सव है। उत्सवों आदि में प्रशस्त भोजन बनाने वाली नारी सिनीवाली कहलाती है।

नारी की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका माता के रूप में है। यह नारी का महान् सौभाग्य और गौरव का विषय है कि विधाता ने नारी में यह दिव्य और विलक्षण क्षमता प्रदान की जिससे वह सन्तानोत्पत्ति और उसका निर्माण जैसा महान् उत्तरदायित्व त्याग और धैर्यपूर्वक वहन कर सके।

वैदिक नारी देवी है। विधाता ने उसे अनेक दिव्यगुण प्रदान किये हैं। उसने चाँद से सौम्यता और शीतलता प्राप्त की है तो सूर्य के अमित तेज से वह

तेजस्विनी भी है । उसके दायित्व गृह तक ही सीमित नहीं बल्कि समय आने पर पराक्रम की देवी बन वह ओजस्वी वाणी में कह उठती है–

अरीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते । ऋ० 10-86-9

अरे मुझे अधीर समझ रहे हो । मैं तो विजेत्री और वीरांगना हूँ ।

नारी के विविध रूपों के कारण ही नारी को वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना में पुरन्धि यह सुन्दर विशेषण दिया गया । अर्थात् बहुत से गुणों और विशेषताओं को धारण करने वाली तथा समाज, नगर, राष्ट्र के निर्माण का महान् दायित्व करने वाली है ।

स्त्रियो यत्र च पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
अनादृते तु स्त्रीणां अफलाः सकलाः क्रियाः ।।

(महा. अनु. 46/5)

स्त्रियाँ सदा पूज्या हैं तथा प्रेमपूर्वक व्यवहार करने योग्य हैं, जहाँ स्त्रियों का आदर किया जाता है । वहाँ देवता सन्तुष्ट रहते हैं । जहाँ स्त्रियों का सम्मान नहीं होता वहाँ सारी क्रियायें निष्फल होती हैं ।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफला क्रियाः ।। (मनु 3/56)

मनु के इन वाक्यों से तत्कालीन स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का पता चलता है महाभारत से ज्ञात होता है कि पाण्डवों की माँ कुन्ती अथर्ववेद में पारंगत थी । 'सुलभा' नाम की स्त्री मोक्ष प्राप्ति के विषय में स्वयं वर्णन करती है । सुलभा की ज्ञान एवं तर्कभरी वाणी सुनकर राजर्षि जनक अवाक् रह गए थे । महाभारत के स्त्री पात्रों में द्रौपदी का व्यक्तित्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । व्यास ने द्रौपदी को प्रिया, दर्शनीया, पण्डिता तथा पतिव्रता कहा है । द्रौपदी युधिष्ठिर संवाद से द्रौपदी के अगाध पाण्डित्य का पता चलता है । मनु महाराज लिखते हैं–

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति । –मनुस्मृति 9.3

स्त्री बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहे । निश्चय ही मनु की यह व्यवस्था स्त्रियों की पवित्रता एवं सुरक्षा के लिए है ।

ऋग्वेद में 21 ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है । इनके द्वारा दृष्ट मंत्रों

की संख्या सैकड़ों में है। ये मंत्र अधिकांशतः दशम मण्डल में है। (1) श्रद्धा कामायनी, (2) शची पौलोमी, (3) उर्वशी, (4) सार्पराज्ञी, (5) यमी वैवस्वती, (6) देवजामय, इन्द्रमातर, (7) इन्द्राणी, (8) शश्वती आंगिरसी, (9) रोमशा ब्रह्मवादिनी, (10) गोधा ऋषिका, (11) सूर्या सावित्री, (12) आदितिः दाक्षायणी, (13) लोपामुद्रा, (14) अपाला आत्रेयी, (15) नदी ऋषिका, (16) घोषा कक्षीवती, (17) विश्ववारा आत्रेयी, (18) वाक् आम्भृणी, (19) जुहूः ब्रह्मजाया,(20) सरमा ऋषिका, (21) यमी। इस प्रकार वेदों में 422 मंत्रों की द्रष्टा ऋषिकाएं हैं।

(2) मध्यकाल में नारी की स्थिति

महाभारत के युद्ध के पश्चात् अनेक प्रकार का अन्धविश्वास और मिथ्या विचार धाराएं प्रचलित हुई। उन्हीं विचार धाराओं में यह मान्यता प्रचलित हो गई कि **'स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम् इति श्रुति'** अर्थात् स्त्री और शूद्र को पढ़ने का अधिकार नहीं है। यहाँ तक लिख दिया गया कि **'मन्त्रोच्चारणे जिह्वाछेदः'** अर्थात् स्त्री और शूद्र मंत्र बोले तो उनकी जिह्वा काट देनी चाहिये। इस प्रकार की मिथ्या धारणाओं को लेकर नारी जाति को शिक्षा और वेद से वंचित कर दिया गया, जिसका परिणाम राष्ट्र को भुगतना पड़ा। योग्य सन्तान का निर्माण न होने के कारण राष्ट्र परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा गया। इस विनाशकारिणी स्थिति को महर्षि दयानन्द ने अपनी सूक्ष्मदृष्टि से देखा और **यथेमां वाचं कल्याणीम् अवदानि जनेभ्यः** यजुर्वेद के इस मंत्र को प्रस्तुत करके यह उद्घोष किया कि नारी को भी शिक्षा का उतना ही अधिकार है जितना पुरुष को है। इस विषय में ऋषि ने अनेक तर्क और प्रमाण दिये हैं। जिसका परिणाम आज ज्ञान-विज्ञान आदि सभी क्षेत्रों में नारी, पुरुषों के समान सक्रिय हैं। वेदों में नारी के लिये **'इष्टका'** (यजु० 13.21) अर्थात् ईंट शब्द का प्रयोग आया है, जिस प्रकार गृह के निर्माण में ईंट का बहुत बड़ा योगदान होता है, मकान की दीवार ईंटों से बनाई जाती है। जिस पर पूरा मकान बना होता है, उसी प्रकार महिला परिवार का निर्माण करती है। वह परिवार की आधार शिला है। ईंट कच्ची होगी, तो दीवार टूट कर मकान गिर जायेगा। इसी प्रकार नारी कमजोर-अशिक्षित और सद्गुणों से विहीन हुई तो परिवार टूट जायेगा, बिखर जाएगा। इसलिए वेदों में **'योषा'** शब्द का प्रयोग हुआ है। यह शब्द **'यु'** धातु से बनता है जिसका अर्थ है सबको जोड़कर,

मिलाकर रखने वाली है । अर्थात् नारी परिवार के सभी सदस्यों को जोड़कर रखती है । परिवार का ताना-बाना सदा सुरक्षित रखती है । इसीलिए उसे **'स्मयमानासः'** अर्थात् मुस्कुराती हुई, प्रसन्न रहने वाली कहा गया है । वह स्वयं प्रसन्न रहती है और परिवार में सभी को प्रसन्न रखती है ।

मुसलमानों के शासन के पश्चात् तो नारी का शोषण ही शोषण हुआ है—केवल उसे सन्तान उत्पन्न करने वाली मशीन, भोग-विलास का साधन, घर में भोजन बनाने, झाड़-पोंछ करने वाली सेविका मात्र ही स्वीकारा गया । अनेक कवियों व संतों ने नारी-निन्दा में अपनी सार्थकता मानी । इनमें आदि शंकराचार्य का नाम भी हैं अपनी पुस्तक प्रश्नोत्तरी में उन्होंने 24 प्रश्न उठाये हैं जिनमें कुछ प्रश्न नारी निन्दा के ही हैं ।

विश्वासपात्रं न किमस्ति ? विश्वासपात्र कौन नहीं है ?

उत्तर - नारी ।

द्वारं किमेकं नरकस्य ? नरक का एक द्वार कौन सा है ?

उत्तर - नारी ।

विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वा ? सबसे बड़ा ज्ञानी कौन है ?

उत्तर - जो स्त्री रूपी पिशाची से ठगा न गया हो ।

किम् तद्विषं भाति सुधोपमम् ? कौन सा विष है, जो अमृत के समान दिखाई पड़ता है ?

उत्तर - नारी ।

कबीरदास, तुलसीदास व पुराणकारों ने नारी-निन्दा में कोई कमी नहीं रखी । ईसाई मजहब में नारी के शरीर में आत्मा का अस्तित्व ही नहीं माना जाता । पिता यदि पुत्री से शारीरिक सम्बन्ध बनाता है तो बाइबल में पाप नहीं माना जाता । लूत नामक 'संत' ने मद्यपान करके अपनी दो बेटियों को गर्भवती बनाया तथा उनसे दो पुत्र उत्पन्न किये । बाइबल में इस कार्य की कही भी निन्दा नहीं मिलती । इसमें तलाक पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं हैं इस्लाम में तलाक प्रथा बहुत चालू है । स्त्री गर्भवती हो, बच्चे वाली या बीमार हो, जवान हो अथवा वृद्धा हो, जब भी पुरुष चाहे तब उसे परित्याग सकता है । एक समय में वह 4 पत्नियां रख सकता है । वहाँ स्त्री केवल भोग

की वस्तु है । बुर्का पहनकर ही बाहर निकल सकती है । बहिश्त में जाने पर खुदा प्रत्येक मुसलमान को 500 अछुती हूरें (अप्सराएं), 400 कुंवारी स्त्रियां, 1000 विवाहिता स्त्रियां देगा ।

(3) आधुनिककाल में नारी की स्थिति

मध्यकाल की अपेक्षा आधुनिककाल में नारी की स्थिति में अनेक सुधार आये हैं । ब्राह्मणों के तगड़े विरोध के बावजूद अंग्रेजों ने भारत में समाज सुधार के कई कानून बनाए । पति के मरने पर पत्नी को साथ ही जीवित जला देने की प्रथा थी जिसे सती प्रथा कहते हैं । अंग्रेज़ों ने राजा राममोहन राय के सहयोग से 1828 ई. में सती प्रथा के विरुद्ध कानून बनाया । 1856 ई. में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के सहयोग से अंग्रेज़ों ने विधवा विवाह को वैधता दिलाने वाला कानून बनाया । प्रायः छोटी उमर की लड़कियों का विवाह बड़ी उमर के पुरुषों के साथ कर दिया जाता था । दीवान हरविलास शारदा के सहयोग से अंग्रेज़ों ने 1929 ई. में बाल विवाह के विरुद्ध कानून बनाया । 1939 में जातपात तोड़कर होने वाले विवाह को वैधता देने वाला कानून घनश्याम सिंह गुप्त के सहयोग से अंग्रेज़ों ने बनाया ।

जालन्धर दोआबा के कमिश्नर जॉन लॉरेंस ने जब जमींदारों में सती प्रथा, कन्याओं को जन्मते ही मारने और कोढ़ियों को जीवित दबाने की बात सुनी तो उसने इन तीनों क्रूर प्रथाओं को समाप्त करने का निश्चय कर लिया । जमींदारों के जमीनों के नए पट्टे बन रहे थे । जो भी जमींदार आता लॉरेंस उसे तीन कसमें खिलाता-विधवा नहीं जलाऊंगा, बेटी नहीं मारूंगा और कोढ़ी नहीं जलाऊंगा । लॉरेंस का साफ कहना था कि जो प्रतिज्ञा नहीं करेगा उसे जमीन नहीं मिलेगी । लॉरेंस की इस व्यवस्था का विरोध बहुत हुआ पर वह अपनी बात से न टला । उसने कहा कि जो विधवा को जलाएगा हमारा कानून उसे फांसी पर लटका देगा ।

समाज के निर्माण में नारी के दायित्व की अपेक्षा की जाती है । व्यक्तियों के समुदाय को समाज कहते हैं । बड़े-बड़े उद्योगों ऊँचे-ऊँचे भवनों तथा अन्य नाना सुख साधनों का नाम समाज नहीं है । निश्चय ही नारी का क्षेत्र आज पहले की अपेक्षा पर्याप्त विस्तृत हो गया है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज वह पुरुषों के समान ही गतिशील है । आज वह ऊँचे पदों पर

प्रतिष्ठित है। आज वह शिक्षिका है, डॉक्टर है, इंजीनियर है, वैज्ञानिक है, उद्योगों की संचालिका है, गायिका है, नायिका है, विधायिका है। आज वह नृत्यशालाओं में है, रंगमंच पर है, संसद् में है, विधानसभा में है, प्रधानमंत्री तथा राष्ट्रपति भी है। जीवन का कोई भी क्षेत्र आज ऐसा नहीं जहाँ कि नारी का योगदान न हो। इतना सब होते हुए भी नारी का मुख्य कर्तव्य उससे छूट गया। इस सब पचड़े में पड़कर या तो नारी को उसकी पूर्ति का अवकाश ही नहीं है या फिर उस ओर उसका उपेक्षा भाव है और वह दायित्व है—**मानव निर्माण** का।

यह कार्य अन्य सब की अपेक्षा अति महत्वपूर्ण है। इसी के कारण तो उसे माता का उच्च स्थान मिला था। जिसके विषय में कहा गया है—**माता निर्माता भवति**। माँ ही उसके बच्चे की वास्तविक निर्मात्री है। इसलिए माँ को बच्चे का प्रथम गुरु कहा गया है, **'मातृमान् पुरुषो वेद'** का यही अर्थ है। वह जो संस्कार जो शिक्षा बच्चे को दे सकती है विश्व में कोई भी शिक्षणालय तथा मानव नहीं दे सकता। प्रत्यक्ष रूप में देखने में तो यही आ रहा है कि आज नारी को अपने इस महान् कर्तव्य का बोध ही नहीं है। आज वह धन एवं नौकरियों के पीछे उसी प्रकार भाग रही है, जैसे कि पुरुष! कहने को कहा जाता है कि आज नारी पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है किन्तु इस चलने में उसका स्वरूप बिगड़ गया। नारी जो सुशीलता, त्याग, तपस्या, लज्जा, सौम्यता, नैतिकता एवं धर्म की प्रतिमूर्ति थी। उसका यह स्वरूप आज तिरोहित होता दिखलाई दे रहा है। इस प्रकार उसका अपना स्वरूप ही स्थिर नहीं रह पा रहा है तो वह मानवनिर्माण कैसे करेगी। इसके लिए उसके पास न समय है, न ही भावना।

इतिहास को उठाकर देखें तो सुस्पष्ट है कि मानव निर्माण में उनकी माताओं तथा पत्नियों ने कितनी प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया है। स्वामी विवेकानन्द से जब अमेरीकन महिला ने यह पूछा कि आपने इस प्रकार की शिक्षा ऐसे विचार किस शिक्षणालय में प्राप्त किये हैं। मैं भी अपने बच्चों को वहाँ भेजना चाहती हूँ, तो विवेकानन्द उदास होकर बोले—वह शिक्षणालय अब टूट चुका हैं क्योंकि वह मेरी माँ थी। महात्मा गांधी शिक्षा के लिए प्रथम बार विदेश जाने लगे तो उनकी धर्मपरायणा माँ ने उनसे प्रतिज्ञा करायी कि वहाँ जाकर (1) शराब नहीं पिओगे, (2) वेश्यागमन से दूर रहोगे। महात्मा

गांधी ने इन दोनों ही पतित कार्यों से पृथक् रहकर इस संबंध में अपनी माँ का उपकार माना है। आज, जब एक माँ ही शराब के नशे में धुत रहती है तो वह अपनी सन्तान को क्या शिक्षा देगी। छत्रपति शिवाजी को सिंहगढ़ के किले की ओर इंगित करके माता जीजाबाई ने कहा था—शिवा, यह किला तुम्हारे पूर्वजों का है जो इस समय मुगलों के अधिकार में है। शिवाजी ने तभी प्रतिज्ञा पूर्ण की। थोड़ा और भूतकाल की ओर जाकर देखें तो हमें विदुषी माता मदालसा की याद आती है, जिसने अपने बच्चों को बाल्यावस्था में ही वह आध्यात्मिक ज्ञान दे दिया कि वे संसार से विरक्त हो गये, वह शिक्षा थी—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंज्जनोऽसि। संसार माया परिवर्जितोऽसि।।

हे पुत्र! तुम शुद्ध तथा ज्ञान स्वरूप हो। संसार की माया से अलग हो। उनके पति राजा थे। राजा ने कहा भगवती! इस राज्य को कौन संभालेगा। तब मदालसा ने एक पुत्र को क्षत्रियत्व की शिक्षा देकर राज्य का अधिकारी भी बनाया। आज कितनी माताएं बच्चों को इस प्रकार की उदात्त शिक्षा प्रदान करती हैं। उनके पास ऐसा करने के लिए समय ही कहाँ है? जब एक महिला प्रातः ८ बजे ही नौकरी रूपी दायित्व की पूर्ति हेतु निकल कर शाम को थकी-मांदी घर लौटेगी, तथा घर आकर उसे भोजन भी बनाना पड़ेगा तो उसके पास बच्चों की शिक्षा का समय एवं सामर्थ्य ही कहाँ रह जायेगा। नौकरी, धन तथा उच्च पद प्राप्ति की अपेक्षा सन्तान का निर्माण बहुत कठिन है, जो कि आज मातृशक्ति ने छोड़ दिया है। नारी का दूसरा कर्तव्य था—अपने प्रतिकूल आन्तरिक गृहव्यवस्था को संभालना। इसके लिए उसे परिवार के प्रति स्वयं को समर्पित कर देना होता था। इस समर्पण भाव को दर्शाते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि एक नववधु पतिकुल में जाकर वहाँ पूर्णतः इस प्रकार विलीन हो जाए, जैसे कि एक नदी समुद्र में लीन हो जाती है। वह परिवार की अभिवृद्धि में पारिवारिक जनों की उन्नति में सहयोग दे, उसका यही धर्म है।

यहाँ पर प्रगतिवादी प्रश्न करते हैं कि इस तरह तो नारी का क्षेत्र संकुचित हो जाएगा। उसकी क्षमताओं का क्या उपयोग होगा। शिक्षा को प्राप्त करके भी एक नारी घर में सन्तान उत्पन्न करके उन्हें संभालती रहे तथा परिवार की सेवा करती रहे तो उसकी शिक्षा का क्या लाभ? जो लोग ऐसा प्रश्न करते हैं वे नहीं जानते कि शिक्षा का अर्थ क्या है? शिक्षा का अर्थ

व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास करना है। उसे पशुत्व से मनुष्यत्व की ओर ले जाना है। शिक्षा का उद्देश्य नौकरी या धन कमाना नहीं है, अपितु जीवन निर्माण करना है। आज यही तो भूल हो रही है कि शिक्षा को रोजगार से जोड़ा जा रहा है।

अतीत में महिलाओं के अधिकारों को सीमित करके उन पर अनेक प्रतिबंध लगा दिये गये। यह स्त्री जाति के साथ अन्याय था, अत्याचार था। महर्षि दयानंद तथा अन्य समाज सुधारकों के प्रयासों से उस दशा में परिवर्तन आया तथा आज महिला पूर्णतः स्वतंत्र है। उसे पुरुषों के समान ही सब अधिकार प्राप्त हैं, किन्तु प्रतीत होता है कि अनेक महिलाओं ने इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग करके अपनी जीवनशैली को ही बदल डाला है। स्त्री, पुरुष की अपेक्षा अधिक शालीन, सात्विक तथा धर्मपरायण होती थी। किन्तु आज के वातावरण में, आज के भौतिकवाद ने, नौकरीवाद ने वे सभी दोष महिलाओं में भी उत्पन्न कर दिये, जो कि उनको पतन की ओर धकेल रहे हैं। किसी ऊँचे पद को प्राप्त कर के आज महिला भी रिश्वत लेती है, भ्रष्टाचार के अनुचित तरीके अपनाती हैं। वह अपने पुरुष मित्रों के साथ बैठकर शराब पीती है। सिगरेट पीना तो उनके लिए आम बात हो गई है। अनेक घोटालों में किसी पद पर प्रतिष्ठित सुशिक्षित महिला का भी सहयोग रहता है। अनेक महिलाएं जेब काटते, महिलाओं के गहने छीनती भी पकड़ी गई हैं।

फिर भी समाज निर्माण में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। सरकारी सेवा में किरण बेदी जैसी महिला पुलिस अफसर एक कीर्तिमान स्थापित करती है तो सामाजिक क्षेत्र में मेघा पाटकर जैसी देवियाँ भी कार्य कर रही हैं। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी महिलाएं सक्रिय हैं। शराबबंदी में भी महिलाओं ने प्रमुख भूमिका निभाई है, किन्तु प्रश्न है कि ऐसी महिलाएं कितनी हैं? बहुत कम। इसके विपरीत उन महिलाओं की संख्या पर्याप्त है जिन्होंने भोगवाद में अपने आप को झोंक दिया है। जो केवल पैसे की मशीन बनकर रह गई हैं। जिनके पास उनके बच्चे के लिए भी समय नहीं है। जिन्होंने अपने चरित्र, नैतिकता, धर्म, संस्कृति को दूर फेंककर वर्तमान पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति को ओढ़ लिया है। समझ में नहीं आता कि ऐसी महिलाओं से समाज एवं राष्ट्र का क्या भला होगा?

इस दुरावस्था को देखते हुए तो महात्मा गांधी का वह कथन याद आता है कि उनके अनुसार महिलाओं का क्षेत्र घर के अन्दर है, बाहर नहीं। घर तथा बाहर दो बराबर के पहलू हैं। प्राचीन परम्परा में सोच समझ कर ही नारी को घर का महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया था। आज घर से बाहर आकर उसका अपना स्वरूप ही बिगड़ गया तो वह समाजनिर्माण में क्या योगदान देगी। हे जन्मदात्री जननी! हे लालनकर्त्री ललना! हे निर्माणकर्त्री मातः! हे नर की अर्धांगिनी नारी! हे सुख दायिनी सुशेवा! हे घर के आधार गृहिणी! हे महत्व प्रदात्री महिला! ये सब दुकान, कार्यालय, व्यापार, होटल, एजेन्सियां, रेल, वायुयान, क्लब तो तुम्हारे बिना भी चल जायेंगे, किन्तु तुम्हारे बिना सन्तान निर्माण नहीं हो सकता।

तुम्हारे त्याग, सेवा, प्रयत्न के बिना घर में सुख-शान्ति नहीं हो सकती। बाह्य योगदान की अपेक्षा यह योगदान तुम्हें गौरव प्रदान करेगा। हाँ, यदि तुम्हें सामाजिक प्रतिष्ठा ही प्राप्त करनी है, तो ऐसे अन्य कार्य हैं, जिससे समाजसुधार भी होगा तथा तुम्हें समाज में गौरव पूर्ण स्थान भी मिलेगा। आज दहेज का दानव आकाश में बादल की तरह समाज में सर्वत्र व्याप्त होता जा रहा है। इस दानव के नीचे जाने कितनी अबलाएं दबकर, छटपटा कर प्राण त्याग रही हैं। हे आज की प्रगतिशील नारी! क्या तुम्हें उनकी चीख पुकार सुनायी नहीं देती? क्या उनके शवों की ओर तुम्हारा ध्यान नहीं जाता? क्या वे तुम्हारी ही सजातीय नहीं हैं? मेरे विचार से नारी जाति के जागरूक हुए बिना इस दानव का अन्त नहीं हो सकता। घर में महिलाएं ही सोचती हैं कि बहू अच्छा दहेज लेकर आए। कहीं-कहीं तो स्वयं कन्या को भी इसकी भूख रहती है।

यदि विवाह योग्य लड़कियां तथा उनकी माताएं सोच लें कि दहेज के लोभियों से विवाह नहीं कराएंगी तो यह कुप्रथा आसानी से रुक जायेगी। इसके अतिरिक्त हे पूज्या नारी! तू शराब-व्यभिचार तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध व्यापक आन्दोलन चला सकती है। सौन्दर्य प्रतियोगिताओं के बहाने से तुम्हारे जिस नग्न स्वरूप का प्रदर्शन किया जा रहा है, क्या तुम्हारी गरिमा के अनुरूप है? घर के सदस्यों को ऐसा न करने के लिये आप विवश कर सकती हैं। इस प्रकार सामाजिक सुधार के अनेक कार्य हैं, जो नारी को प्रतिष्ठा भी दिलायेंगे। यह तभी होगा जब आज पुरुषों की होड़ में तेजी से भागती हुई नारी अपने कदमों को वहाँ से रोक ले।

आज नारियों ने राजनीति से लेकर अन्तरिक्ष तक की यात्रा को तय किया है। जिसमें प्रवेश कर पाना कभी नारियों के लिये आकाशकुसुम था। आज सभी बाधाओं को पार कर राज्यसभा, लोकसभा, विधान परिषद्, पर्वतारोहण, तैराकी, चिकित्सा, कानून जैसे उच्च पदों पर नारी प्रतिष्ठित है। श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रथम महिला सदस्य बनीं। श्रीमती सरोजनी नायडू ने प्रथम राज्यपाल के पद को सुशोभित किया। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री तथा योजना आयोग की प्रथम महिला अध्यक्षा बनने का श्रेय प्राप्त किया। श्रीमती मीरा कुमार प्रथम महिला लोक सभा अध्यक्षा बनीं। प्रशासनिक सेवा में मैगसेसे पुरस्कार से पुरस्कृत किरण बेदी की शौर्यगाथा अपने आप में महत्वपूर्ण है। प्रथम रेलचालिका सुरेखा शंकर यादव तथा विमान चालक के रूप में सौदामिनी देशमुख को हम कैसे अनदेखा कर सकते हैं। इंग्लिश चैनल तैर कर पार करने वाली प्रथम महिला आरती साहा, सर्वोच्च न्यायालय की प्रथम महिला न्यायाधीश न्यायमूर्ति मीरा साहब फातिमा बीबी तथा अन्तरिक्ष की यात्रा करने वाली कल्पना चावला आदि दर्जनों नारियों के नाम गिनाये जा सकते हैं जिन्होंने भारत में ही नहीं विश्व में एक सुदृढ़ स्थान बनाया हुआ है।

ऐसे समय में जन्म हुआ एक ऐसे ऋषि का जिन्होंने नारी को गौरवपूर्ण स्थान देते हुए जगदम्बा के सिंहासन पर बिठा दिया। हे महर्षि देव दयानंद! तुम धन्य हो नारी जाति के मसीहा के रूप में आपकी ख्याति सदैव बनी रहेगी। आपने मानव समूह को चेताया है कि नारी भोग्या नहीं, विलास की वस्तु नहीं, नारी पैरों की जूती भी नहीं। नारी मानव जाति की जीवनी शक्ति है, नारी जगदम्बा है। हे ऋषिवर स्त्री जाति आपके इस उपकार के लिए सदैव आपकी ऋणी रहेगी। वे सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में लिखते हैं–

वह कुल धन्य है। वह सन्तान बड़ी भाग्यवान् है जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान हों।

महर्षि दयानंद की दृष्टि में नारीत्व व मातृत्व अविभाज्य थे। वे नारी को जन्मदात्री मातृशक्ति के रूप में समादृत करते थे। सन् 1881 में चित्तौड़ की एक घटना है कि एक समय महर्षि जी व्याख्यान के पश्चात् कुछ राजाओं व पण्डितों के साथ कहीं भ्रमणार्थ जा रहे थे। मार्ग में एक छोटा सा मन्दिर मिला। वहाँ कुछ बच्चे खेल रहे थे। महर्षि ने वहाँ पहुँचकर एकाएक अपना

सिर झुका लिया। उसे देखकर एक पंडित ने कहा कि—स्वामी जी आप कितना भी प्रतिमा पूजन का खण्डन करें परन्तु आपको भी देवबल के समक्ष सिर झुकाना पड़ता है। महर्षि उनका कथन सुनकर खड़े हो गये और उन बालकों में खेलती हुई एक नग्न बालिका की ओर संकेत करके बोले—

देखो! यह मातृशक्ति है जगत् जननी है, जिसने हम सब को जन्म दिया है इसका सम्मान करना हमारा कर्त्तव्य ही नहीं, बल्कि परम धर्म है।

अहो! महर्षि के इन शब्दों से नारी के प्रति उनका महान् भाव जानकर सब अवाक् रह गये।

नेपोलियन ने सत्य की कहा है—

Give me good mothers, I will give you good nation.

आप मुझे अच्छी माताएँ दो, मैं आप को अच्छा राष्ट्र दूँगा।

इसी प्रकार रामकृष्ण परमहंस कहते हैं—

Look up all women of your own mother, never look at the face of woman, but look at her feet. All evil thoughts will then fly away.

सब नारियों को अपनी माता की भाँति देखो। नारी के मुख की ओर कभी मत देखो। इस प्रकार करने से सारे कुविचार समाप्त हो जायेंगे।

इस बात से हम भली-भाँति परिचित हैं कि कन्या भ्रूण हत्या एक घृणित अपराध है लेकिन फिर भी इस तरह की घटनाएं आम सुनने में मिलती हैं। इस विषय पर एक कविता अग्रलिखित है, जरा देखिए—

मुझे बचा लो माँ
जहान की तू परवाह न कर
दहेज की छोड़ दे फिकर
सम्मान तेरा बढ़ाऊँगी मैं
आंगन तेरा सजाऊँगी मैं
जिस पुत्र की है तुझे चाह
वो तो अंश है मेरा
जब मैं ही नहीं आऊँगी दुनियाँ में
कहाँ से आएगी संतान तेरी

बेटी का गर किया त्याग तुमने
बेटे की बहू कहाँ से पाओगे
न कर खुद से जुदा मुझे
मैं तो हूँ अक्स तेरा
मुझे जो मिटाओगे
माँ कहकर किसे बुलाओगे
कलई रह जाएगी सूनी
बहन को जो दफनाओगे
आज जो मुँह मोड़ोगे मुझसे
कल इस दुनियाँ में कहाँ से आओगे?

जिससे लड़के-लड़कियों के लिंगानुपात का स्तर तेजी से नीचे गिर रहा हैं ताजा आंकड़ों पर नजर डालें तो पिछले 5 सालों में 5 लाख भ्रूण हत्या के मामले सामने आए हैं। प्रतिदिन दो हजार बेटियां कन्या भ्रूण हत्या का शिकार हो रही हैं। इस देश में गर्भ में कन्या की हत्या करने का फैशन सदियों पुराना हो गया है। फर्क सिर्फ इतना है कि पहले उन्हें जन्म के बाद मारते थे और आज जन्म के पहले ही मार देते हैं। आज का समाज बेटियों को जन्म देने से ही कतरा रहा है। बेटियों को आर्थिक बोझ समझते हैं। बेटी का होना अपमान मानते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण दहेज है एवं अन्य कारण भी हैं। जो दहेज प्रथा समाज में पनप गई है। बहुत से लोग, सभी तो नहीं पहले पूछते हैं कि शादी पर कितना खर्च करोगे, अपनी मांग रख देते हैं, अगर उसकी पूर्ति न हो तो अबलाओं को दहेज के भूखे भेड़िये दहेज की भेंट चढ़ा देते हैं, उसको जला या फांसी का फंदा गले में डाल पंखे से लटक कर जान देने पर बाध्य कर देते हैं।

हम यह क्यों भूल जाते हैं कि हमें जन्म देने वाली माँ भी किसी की बेटी थी। अगर उन्हें भी मार दिया जाता तो हमारा अस्तित्व ही न होता। वही बेटी माँ बन कर सम्भालती है, पत्नी बनकर रास्ता दिखाती है और बेटी बन सम्मान बढ़ाती है। लड़कियाँ परिवार और कारोबार दोनों चलाती हैं। वे सब कर सकती हैं, जो लड़के कर सकते हैं। फिर ये भेदभाव क्यों?

2015 की जनगणना के अनुसार कन्या भ्रूणहत्या की समस्या

दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है । जहाँ 1000 पुरुषों पर 994 महिलाओं का होना सर्वोपरि माना जाता है, वहीं ताजा आंकड़ों के अनुसार यह अनुपात 1000 पुरुषों पर 943 महिलाएं ही रह गई हैं । दमन और दीव में बेहद ही शर्मनाक स्थिति है । यहाँ 1000 पुरुषों पर केवल 618 महिलाएं ही उपलब्ध हैं । देश की राजधानी दिल्ली में भी 1000 पुरुषों पर केवल 866 महिलाएं ही हैं । अन्य राज्यों की बात करें तो 1000 पुरुषों पर चण्डीगढ़ में 818, पंजाब में 893, हरियाणा में 877, उत्तर प्रदेश में 908, बिहार में 916, महाराष्ट्र में 946, मध्यप्रदेश में 930, तमिलनाडु में 995, राजस्थान में 926, कर्नाटक में 968, गुजरात में 918, ओड़िशा में 978, झारखंड में 947, असम में 954, छत्तीसगढ़ में 991, जम्मू-कश्मीर में 883, उत्तराखंड में 963, हिमाचल प्रदेश में 974, त्रिपुरा में 961, गोवा में 968, अरुणाचल प्रदेश में 920, मिजोरम में 975, सिक्किम में 889, अंडेमान और निकोबार द्वीप समूह में 878, दादरा और नागर हवेली में 775, लक्षद्वीप में 946 महिलाएं हैं ।

आर्थिक मंदी की आड़ में कन्या भ्रूण हत्या करने के मामले अक्सर सामने आते रहे हैं । ऐसी परिस्थिति में भी आर्थिक क्षेत्र में विकास की निम्न दर के बावजूद केरल ने जनसांख्यिकीय क्षेत्र में जो सकारात्मक विकास किया है वह एक विलक्षण उदाहरण है । वर्तमान आंकड़ों के अनुसार केरल में लिंगानुपात 1000 पुरुषों पर 1084 महिलाओं का है । भारत के अन्य राज्यों के लिए केरल की लिंगानुपात दर एक आदर्श है जिसने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है ।

किन्तु यह समस्या इतनी छोटी नहीं कि एक या दो राज्यों में लिंगानुपात कम होने से खत्म हो जाए । यह एक विशाल और जटिल समस्या है जिसे हर राज्य, हर शहर और हर गांव के लोगों को मिल कर खत्म करना होगा । एक पहलू और भी है जो समाज में तेजी से फैल रहा है और वह है माँ बाप की सम्पत्ति में बेटियों की भागीदारी । लोगों का मानना है कि अगर बेटी हुई तो उसे पढ़ाना-लिखाना पड़ेगा, बड़ी होने पर शादी में मोटा दहेज देना होगा और अपनी सम्पत्ति में हिस्सा भी, जो न पिता को मंजूर होता है और न भाई को । लेकिन जब बेटे की शादी की बात आती है तो बहू भी पढ़ी-लिखी, नौकरी वाली ढूंढते हैं । बहू के मायके की जायदाद में उसकी हिस्सेदारी पाने के लिए कोर्ट-कचहरी तक पहुँच जाते हैं । पर ये भूल जाते हैं कि यदि लड़की बेटी बन

दहेज ले जाएगी तो वही बेटी बहू बन दहेज लेकर भी आएगी। यदि बेटी ससुराल में मायके की संपत्ति ले जाएगी तो बहू बेटी होकर मायके से भी संपत्ति लेकर आएगी।

इस समस्या को दूर करने के लिए सरकार ने कई कानून बनाए हैं। किन्तु कानून का पालन बहुत कम हो रहा है। गुजरात में डीकरी बचाओ अभियान, धनलक्ष्मी योजना, पी.एन.डी.टी. कानून के अंतर्गत केन्द्रीय निगरानी बोर्ड का गठन किया गया है। साथ ही सरकार ने लिंग चयन रोकने और प्रसवपूर्व निदान तकनीक को नियमित करने के लिए व्यापक कानून 1994 में ही बना दिये थे और इसमें 2003 में संशोधन भी किया गया। पर सवाल यह है कि कानून बनने के बाद भी यह समस्या थमने का नाम क्यों नहीं ले रही है।

अब कुछ ऐसे आंकड़े देखें जिनमें कानून की सख्ती से पालन किया गया। सन् 2012 में सरकार ने कन्या भ्रूणहत्या करने वाली एक महिला को 20 साल की सजा सुनाई। साथ ही 91 ऐसे क्लीनिकों के लाइसैंस भी रद्द किए जो कन्या भ्रूणहत्या को बढ़ावा दे रहे थे। यही नहीं, सरकार ने 83 अल्ट्रासाऊंड मशीनें जब्त कीं और 361 अल्ट्रासाऊंड केन्द्रों को नोटिस भी जारी किया। बीड़ में पुलिस ने अवैध गर्भपात और कन्या भ्रूणहत्या के मामले में एक डॉक्टर और उसकी पत्नी को गिरफ्तार किया है। साथ ही अन्य 15 लोगों के खिलाफ चार्जशीट दाखिल की गई। यमुनानगर के स्वास्थ्य विभाग, जगाधरी ने जिले के पॉश सरस्वती कालोनी में छापा मारकर एक डॉक्टर को रंगे हाथों पकड़ा। पुलिस ने पश्चिम महाराष्ट्र में कन्या भ्रूणहत्या के दोषी एक अस्पताल के मालिक और उसकी पत्नी को गिरफ्तार किया।

कानून की इतनी सख्ती और समाज में चलाए जा रहे जागरूकता अभियान से इस समस्या का समाधान पूरी तरह से नहीं हो पा रहा है। शायद समस्या के सही कारण को हम दूर नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि कहीं न कहीं हम खुद ही इस समस्या को बढ़ावा दे रहे हैं। कभी माता-पिता के रूप में, तो कभी डॉक्टर के रूप में तो कभी लोभी ससुराल वाले बनकर।

सारे संसार में मुसलमानों के 53 देशों में से 22 देशों में तीन तलाक़ को गैर-कानूनी समझ कर समाप्त कर दिया गया है। जैसे पाकिस्तान ने 1962 ई० और बंगलादेश ने 1971 में इसको गैर-कानूनी घोषित करके समाप्त कर दिया था। भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार पुरुष एवं स्त्री को समान अधिकार दिये गये हैं। इस प्रकार यह असंवैधानिक ही है। इससे मुस्लिम स्त्रियों के अधिकारों का हनन होता है। यह उनके प्रति अन्याय एवं अत्याचार ही है। अतः भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 22-8-2017 से तीन तलाक़ की कुप्रथा को समाप्त कर दिया है जिससे मुस्लिम बहनों को काफी राहत मिली है क्योंकि यह असंवैधानिक था।

यहाँ तक कि कईं मुस्लिम देशों ने तो चार शादियों पर भी प्रतिबंध लगा दिया है। अतः आज के संदर्भ में जनसंख्या वृद्धि की दर कम करने के लिए भारत सरकार को भी इस पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए। इससे एक तो मुस्लिम बहनों को न्याय मिल पायेगा तथा दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि पर भी रोक लग पायेगी तथा तीसरे सभी के लिए समान कानून लागू होगा।

यदि हम आज की बात करते हैं तो नारी जाति की दशा सुधरी है। यद्यपि कुछ मानव रूपी दानव यत्र तत्र महिलाओं पर अत्याचार करने से बाज नहीं आते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि वर्तमान में स्त्रियों की अनेक दुर्दशाओं के लिए महिला भी कम उत्तरदायी नहीं। दहेज के कारण जब किसी बहु-बेटी को जिन्दा जलाया जाता है तो क्या इस कुकर्म में उसकी सास व ननद शामिल नहीं होती। जब गर्भ में किसी कन्या भ्रूण की हत्या की जाती है तो क्या उस घर की महिलाओं की इस निंदनीय कार्य में मौन स्वीकृति नहीं होती। जब बात आ गई है भ्रूण हत्या की तो मैं क्षमा चाहूँगा।

एक कविता के माध्यम से एक छोटी सी बच्ची पर हुए जुल्म का वर्णन जो बहुत भावपूर्ण है, कहना चाहता हूँ :–

कोर्ट में एक अजीब मुक़द्दमा आया
एक सिपाही एक कुत्ते को बाँध कर लाया ।
सिपाही ने जब कटघरे में आकर कुत्ता खोला
कुत्ता रहा चुपचाप मुँह से कुछ ना बोला ।
नुकीले दाँतों में कुछ खून सा नजर आ रहा था ।
चुपचाप था कुत्ता किसी से ना नजर मिला रहा था,
फिर हुआ खड़ा एक वकील देने लगा दलील ।
बोला इस जालिम के कर्मों से यहाँ मची तबाही है ।
इसके कामों को देखकर इंसानियत घबराई है ।
ये क्रूर है, निर्दयी है, इसने तबाही मचाई है ।
दो दिन पहले जन्मी एक कन्या अपने दाँतों से खाई है ।
अब ना देखो किसी की बाट
आदेश करके उतारे उसे मौत के घाट
जज की आँखें हो गई लाल ।
तूने क्यों खाई कन्या जल्दी बोल डाल ।
तुझे बोलने का मौका नहीं देना चाहता ।
लेकिन मजबूरी है तब तक तो तू फाँसी पर लटका पाता ।
जज साहब इसे जिन्दा मत रहने दो ।
कुत्ते का वकील बोला लेकिन इसे कुछ कहने तो दो ।
फिर कुत्ते ने मुँह खोला और धीरे से बोला–
हाँ मैंने वो लड़की खाई है ।
अपनी कुत्ता नियत निभाई है ।
कुत्ते का धर्म है ना दया दिखाना ।
माँस चाहे किसी का हो देखते ही खा जाना ।
पर मैं दया धर्म से दूर नहीं
खाई तो है मेरा कसूर नहीं ।
मुझे याद है जब वो लड़की कूड़े के ढेर में पाई थी ।

और कोई नहीं उसकी माँ ही उसे फेंकने आई थी ।
जब मैं उस लड़की के पास गया
उसकी आँखों में देखा भोला विश्वास
जब वो मेरी जीभ देखकर मुस्काई थी
कुत्ता हूँ पर उसने मेरे अन्दर इंसानियत जगाई थी ।
मैंने सूंघ कर उसके कपड़े वो घर खोजा था
जहाँ माँ उसकी थी और बापू भी सोया था ।
मैंने भू-भू करके उसकी माँ जगाई ।
पूछा तो क्यूँ उस कन्या को फेंक कर आई ।
चल मेरे साथ उसे लेकर आ
भूखी है वो उसे अपना दूध पिला ।
माँ सुनते ही रोने लगी
अपने दुःख ही सुनाने लगी ।
बोली कैसे लाऊँ अपने कलेजे के टुकड़े को
मेरी सासू मारती है तानों की मार
मुझे ही पीटता है मेरा भरतार ।
बोलता है लड़का पैदा कर हर बार
लड़की पैदा करने को सुख मनाही
कहना है उसका कि कैसे जाएगी ये सारी ब्याही
वंश की तो तूने काट दी बेल
जा खत्म करदे इसका खेल
माँ हूँ लेकिन थी मेरी लाचारी ।
इसलिए फेंक आई अपनी बिटिया प्यारी ।
कुत्ते का गला भर आया ।
लेकिन बयान वो पूरे बोल गया ।
बोला मैं फिर उलटा आ गया ।
दिमाग पर मेरे धुआँ सा छा गया ।
वो लड़की अपना अंगूठा चूस रही थी ।
मुझे देखते ही हँसी जैसे मेरी नाट में जग रही थी ।
कलेजे पर मैंने भी रख लिया पत्थर

फिर भी काँप रहा था मैं थर-थर
मैं बोला अरी बावली जीकर क्या करोगी
यहाँ दूध नहीं हर जगह तेरे लिए जहर है पीकर क्या करोगी ।
कुत्तों को तो करते हो बदनाम
परन्तु हमसे भी घिनौने करते हो काम ।
जिन्दा लड़की को पेट में मरवाते हो
और खुद को इन्सान कहलवाते हो
मेरे मन में डर गई उसकी मुस्कान
लेकिन मैंने इतना तो जान लिया था
जो समाज इससे नफरत करता है ।
वहाँ से तो जाना इसका अच्छा
इसका तो मर जाना अच्छा ।
तुम लटकाओ मुझे फांसी चाहे मारो जूते
लेकिन खोज के लाओ पहले वो इन्सानी कुत्ते ।

अन्त में मैं इतना ही कहना चाहूँगा, जमीन से पानी खत्म हो रहा है । पैट्रोल खत्म हो रहा है, बेटियाँ भी खत्म हो रही हैं । पानी और पैट्रोल का हल तो फिर भी मिल जाएगा पर बेटियों का नहीं । माँ तो सबको चाहिए । पर बेटी किसी को नहीं । सूरज सबका है, चांद सबका है, हवा, फूल, तितलियाँ सबकी हैं पर बेटियाँ किसी की भी नहीं ।

अन्त में मैं इतना ही कहना चाहूँगा
दिल को कभी शीतल तो होने देना
माँ अपने अरमानों को अपनी बेटी में संजो देना
मैं नहीं तेरे लाडले से कम बनूँगी ।
माँ मुझे एक बार पैदा तो होने देना ।

आधुनिक काल में दहेज एक कलंक है जिसके कारण अनेक कन्याएँ कुंवारी रह जाती हैं ? दहेज लेना व देना दोनों ही दंडनीय अपराध हैं । फिर भी अधिकतर लड़कों के माता-पिता दहेज लेते हैं । यहाँ तक कई लड़के वाले इतने लोभी होते हैं कि दहेज के लिये लड़की को तंग भी करते हैं । यहाँ तक कि एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में प्रतिदिन 23 लड़कियों की दहेज के कारण हत्याएं कर दी जाती हैं । यह आंकड़ा प्रतिवर्ष बढ़ता ही जा रहा है । जबकि लड़कियाँ आज इतनी सुशिक्षित होकर अच्छे पदों पर कार्य कर रही

हैं । यह एक शर्म की बात है । ऐसे अपराधों को रोकने के लिये सरकारों को बहुत सख़्त कानून बनाने की आवश्यकता है ताकि ऐसे अपराधियों को कड़ी से कड़ी सज़ा मिल सके । लड़की के माता-पिता को चाहिये कि ऐसे लोभियों के यहाँ अपनी लड़की का विवाह भूल कर भी न करें । दहेज के विषय में 'दहेज मांगना छोड़ो' नामक एक कविता सुनिए–

दहेज की इस कुटिल प्रथा ने अत्याचार किये भारी ।
छोड़ो छोड़ो दहेज लेना भारत के हे नरनारी । ।
जैसे बनजारे पहले बैलों को खूब चराते हैं ।
फिर वे उन्हें बेचने के हित मोलतोल बतलाते हैं । ।
त्यों लड़के के पिता जबकि घर लड़की वाले आते हैं ।
शादी से पहले लड़के की कीमत खूब बताते हैं । ।
लड़की वाले बहुत गिड़गड़ाते हैं पांव दबाते हैं ।
किन्तु न वे टस से मस होते वज्र हृदय बन जाते हैं । ।
हो निराश फिर रोते हैं कन्या के पिता व महतारी ।
छोड़ो छोड़ो दहेज लेना भारत के हे नर नारी ।
कितने जाति सुधारक त्यागी होने का दम भरते हैं ।
दहेज लेने के विरोध में सुन्दर भाषण करते हैं । ।
पर उनके लड़के की शादी का जब अवसर आता है ।
किसी रूप में दहेज लेने उनका जी ललचाता है । ।
कन्या के पितृ कहते हैं हम पर श्रीमान् दया करिये ।
निज सुपुत्र से कन्या का करके विवाह चिंता हरिये । ।
यथा शक्ति आपकी करेंगे हम सेवक खातिरदारी ।
छोड़ो छोड़ो दहेज लेना भारत के हे नर नारी । ।
लड़के के पितृ फरमाते यूँ सच्ची बात कहेंगे हम ।
जाति सुधारक हैं इस कारण कभी दहेज न लेंगे हम । ।
किन्तु हमें अपने लड़के को एम.ए. पास कराना है
कोई ऊँची डिग्री लेने लन्दन भी भिजवाना है । ।
बीस हजार फीस आदि का व्यय जो सज्जन भर देंगे ।
उसकी कन्या से अपने लड़के की शादी कर देंगे । ।
होनहार है पुत्र किसी दिन, होगा अफसर अधिकारी ।

छोड़ो-छोड़ो दहेज लेना भारत के हे नर नारी ।।

कभी कभी तो दृश्य देखने में ऐसे भी आते हैं ।
दहेज लेने कितने कन्या के द्वारे डट जाते हैं ।
देख हरकतें जिनकी बेजा, मात मुड़चिरे खाते हैं ।
भाँति-भाँति से लड़की वालों को वे खूब डराते हैं ।।
लो बिन ब्याहें ही लड़की को हम तो लौटे जाते हैं ।
ऐसी धमकी सुन कन्या के मात-पिता घबराते हैं ।।

देते मुँह मांगा दहेज हैं बेच बाच पूंजी सारी ।
छोड़ो-छोड़ो दहेज लेना भारत के हे नर नारी ।।

दहेज के कारण कितनी कन्याएँ क्वारी रह जाती हैं ।
दहेज के कारण कितनी कन्या अयोग्य वर पाती हैं ।।
दहेज के कारण कितनी कन्या निज देह जलाती है ।
दहेज के कारण कितने हो ऋणी जन्म भर रोते हैं ।।
दहेज के कारण ही घर बरबाद सैकड़ों होते हैं ।
दहेज के कारण कितने ही ऋणी जन्मभर होते हैं ।

दहेज के कारण कितनी हो सन्तति अनपढ़ बेचारी ।
छोड़ो-छोड़ो दहेज लेना भारत के हे नर नारी ।।

कन्याओं के माता-पिता आदि पर नेह-निगाह करो ।
सब कुछ दिया सुता, जिसने दी मत दहेज की चाह करो ।
वर कन्या अनुकूल देखकर चाहे जहाँ विवाह करो ।
कोई कुछ भी कहता हो कहने दो मत परवाह करो ।

हो प्रकाश सद्भाव परस्पर मिटे कलह कटुता सारी ।
छोड़ो-छोड़ो दहेज लेना भारत के हे नर नारी ।।

—पंडित प्रकाशचन्द्र कविरत्न

आज हमारे समाज में भ्रूण हत्याएँ भी काफी बढ़ गई हैं । यह एक कानूनी दण्डनीय अपराध है । फिर अनेक व्यक्ति लड़के के लालच में कन्या भ्रूण हत्याएँ कर रहे हैं । इसके विषय में डॉ० दर्शन लाल आज़ाद द्वारा लिखित एक कविता सुनिए—

कानून सब के लिये सीधा साफ चाहिये
माई लार्ड मुझे अपनों से इन्साफ चाहिये
मेरा क़त्ल है कलंक आपके अदल पर

बताओ कौन सी धारा है मेरे क़त्ल पर ।।
मेरी माँ भी क़ातिल है क़ातिल बाप भी
डॉक्टर, वकील क़ातिल, क़ातिल आप भी
मुझे मारने की साजिश है सारे समाज की
हर सूरत मेरे लिये सूरत है जल्लाद की ।।
नहीं है इजाज़त मुझे कहीं भी फरियाद की
मेरे हाल पे लिखती नहीं कलम आज़ाद की
आपका कानून मुझ से इन्साफ नहीं करता
कोई वकील मुझ बेबस का केस नहीं लड़ता ।।
मगर अपना यह केस मैं आप लडूँगी
इस जुल्म के खिलाफ बग़ावत करूँगी
सभी कत्ल पे चिल्लाते हैं मैं भी चिल्लाऊँगी
आहों से अपनी मैं पत्थर दिल पिघलाऊँगी ।।
चैन से सोने नहीं दूंगी क़ातिलों को रूलाऊँगी
मर कर मैं किसी कवि की कल्पना में आऊँगी
गीतकार का गीत बन सोई जमीर जगाऊँगी मैं
दयानंद व गांधी सा कोई राहबर बनाऊँगी मैं ।।
मुझे मारने वालो तुम्हें हिसाब देना होगा
मेरे इक-इक सवाल का जवाब देना होगा
इक तरफ मैं अकेली इक तरफ विज्ञान है
मुझ नन्हीं सी जान का दुश्मन सारा जहान है ।।
पहले लुटती थी गली, कूचे, पार्क ग्राऊंड में
आजकल कट रही हूँ मैं अल्ट्रा-साऊण्ड में
इस अल्ट्रा-साऊण्ड पर लाखों कुरबान होती हैं
संसार में आने से पहले अपनी जान खोती हैं ।।
मेरा कसूर क्या है किस जुर्म की मुझे सजा देते हो
दुनियाँ में आने से पहले मेरी दुनियाँ मिटा देते हो
बेटे के लिए मारते हो वो मर गया तो क्या करोगे

बेटे की मौत के साथ आजाद क्या तुम भी मरोगे । ।
उस बच्ची का मुकद्दमा है जिसे आने से रोका गया है
अदालत को इस केस का फैसला सुनाने से रोका गया है
इस बुराई के खिलाफ आवाज उठाओ दोस्तो
भ्रूण हत्या पाप है इस पाप को मिटाओ दोस्तो । ।

नारीमहिमा

नारी धरती से है भारी, अतुल धीरता इसने है धारी ।
माता कहलाती है नारी, नहीं किसी की है यह आरी ।
मन में ममता इसके अपार भरी, लगती सबको मां अति प्यारी ।
ममता थारी हम सबकी महतारी, दुःखी देख होती है दुःखियारी
नयनों में लाज अतिशय संवारी, सप्त पीढ़ियाँ इसने ही तारी ।
कोमलता इस पर जाती वारी, करुणा इसकी है सहचारी ।
दुष्टों पर सदैव रहती भारी, कुटिलों के लिये तीखी कटारी
विश्व कर्मार्य तेरे चरणों का पुजारी आशीर्वाद पा माँ का बने आभारी ।

अन्ततः उपरोक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भूतकाल की अपेक्षा आज नारी की दशा में काफी सुधार हुआ है और कानून ने भी उसे काफी अधिकार प्रदान किये हैं जिनका दुरुपयोग करके कुनारियां नारी जाती के लिये कलंक बन जाती हैं । आज भी नारी पर अनेक पुरुष अत्याचार करते हैं परन्तु ऐसे पुरुषों से नारी को डरना नहीं चाहिये अपितु परिस्थितियों का वीरता से सामना करना चाहिये तभी भविष्य में नारी के जीवन में सुधार आयेगा और उसका भविष्य उज्ज्वल होगा । परन्तु जब तक हमारी मानसिकता नहीं बदलेगी, तब तक सुधार नहीं हो पायेगा । महिलाओं को भी महारानी लक्ष्मी बाई की भाँति विरांगना बनना होगा, नारी जाति को अपमानित करने वाले कार्यों को छोड़ना होगा, नारी को भी नारी के प्रति अपने कर्त्तव्य को धर्मानुसार निभाना होगा । सब को मिल कर ही इस समस्या का

10. स्वास्थ्य

पहला सुख निरोगी काया ।
दूसरा सुख घर में हो माया ।
तीसरा सुख सुशीला नारी ।
चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी ।
पाँचवाँ सुख राज्य में हो पाशा (उपाधि) ।
छठा सुख सुस्थान वासा (निवासस्थान) ।
सातवाँ सुख संतोषी वासा (मन) । ।

अब मानव शरीर के मंत्रिमंडल को देखिये–

1.	आत्मा	राष्ट्रपति
2.	मन	प्रधानमंत्री
3.	बुद्धि	कानून मंत्री
4.	फेफड़े	गृह मंत्री
5.	हृदय	वित्त मंत्री
6.	चमड़ी	रक्षा मंत्री
7.	दाँत	खाद्य मंत्री
8.	पाँव	यातायात मंत्री
9.	नाक	स्वास्थ्य मंत्री
10.	आँखें	निरीक्षण मंत्री
11.	कान	डाक एवं तार मंत्री
12.	हाथ	उद्योग एवं संसाधन मंत्री
13.	जिह्वा	प्रसारण मंत्री
14.	दिमाग़	शिक्षा मंत्री
15.	उदर	ऊर्जा मंत्री

यह बड़े मज़े की बात है कि हम जन्मकाल से ही शरीर में रह रहे हैं फिर भी इसकी बनावट के बारे में बहुत कम जानते कि शरीर में कहाँ-कहाँ क्या है? क्यों है? किस लिये हैं? किन हालात में है और क्या कर रहा है? जबकि जिस मकान में हम रहते हैं उसके कोने-कोने के विषय में जानते हैं कि कहाँ क्या है? क्यों है? किस काम का है? किन हालात में है? शरीर भी एक मकान ही है, जिसमें जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हमें रहना होता है । मकान तो

हम बदल भी सकते हैं, परन्तु शरीर नहीं बदल सकते। शरीर छोड़ा जाता है बदला नहीं जाता। मान लीजिए 80 वर्ष तक की आयु लेकर हम पैदा हुए हैं तो हर हालत में हमें शरीर रूपी मकान में 80 वर्ष तक रहना ही होगा। हम चाह कर भी इस मकान को छोड़ नहीं सकेंगे। तो क्या हमें ऐसे मकान के विषय में जानकारी नहीं होनी चाहिए? बड़े-बड़े विद्वान् व्यक्तियों को अपने शरीर के विषय में जानकारी नहीं होती। अगर उनके पेट में गड़बड़ और गुड़गुड़ होने लगे तो उन्हें डॉक्टर से पूछना पड़ता है कि हमारे पेट में यह क्या हो रहा है? जरा शरीर के अंदर की बनावट के विषय में जानिए–

हमारे शरीर में सात धातु, सात उप-धातु, मल और सात त्वचाएं हैं। वात, पित्त, कफ, तीन दोष हैं, 900 स्नायु हैं जिनमें 600 बड़े, 230 छोटे और 70 केवल गर्दन में है। हाथ, पैर, कन्धे आदि में 210 संधियाँ हैं। 206 हड्डियाँ हैं। मर्मस्थान 106 हैं जो दोनों पैरों व हाथों में 22-22, छाती और कोख में 12, पीठ में 15, गर्दन व ऊपरी भाग में 36 हैं। इनमें 9 मर्मस्थान घातक हैं अर्थात् जिन पर चोट लगने से मृत्यु हो जाती हैं 700 नाड़ियाँ, 24 नाड़ियाँ, 639 मांस पेशियाँ (स्त्री शरीर में 520) 16 मोटी नाड़ियाँ, 9 छिद्र होते हैं, 14 हड-जोड़ हैं हृदय के बायें भाग में पेट की तिल्ली और फेफड़े, दायें भाग में लिवर होता है। हृदय व फेफड़ों में नीचे आमाशय, बड़ी व छोटी आंत, दो गुर्दे होते हैं। साढ़े चार करोड़ रोम, 8 तोला हृदय जिह्वा, 1सेर पित्त, 2.5 सेर कफ, पाव भर शुक्र, 2 सेर मेद, इसके अतिरिक्त उपनिषदों के अनुसार 72,72,10,201 नाड़ियाँ मानव शरीर में होती हैं। हमारे शरीर में लाल रक्त कोशिका 128 दिन तक जीवित रहती हैं। इसमें हर सैकंड 25 मिलियन नई कोशिकाएं बनती हैं। मानव शरीर की अद्भुत रचना को देखकर एक हिन्दी कवि ने लिखा है–

आदमी का जिस्म क्या है, जिसपे शैदा (मोहित) है जहाँ
एक मिट्टी की इमारत, एक मिट्टी का मकाँ।
खून तो गारा है इसमें, ईंट इसमें हड्डियाँ,
चंद सांसों पर खड़ा है यह ख्याली आसमाँ।
मौत की पुरजोर आँधी इससे जब टकराएगी,
देख लेना यह इमारत खुद-ब-खुद गिर जाएगी।

अधिकतर व्यक्ति गहरी श्वास लेने के अभ्यस्त नहीं होते जिससे फेफड़ों का लगभग एक तिहाई भाग निष्क्रिय पड़ा रहता है। शहद की मक्खी के छत्ते की भाँति फेफड़ों में लगभग 7,30,00,000 स्पंज जैसे कोष्ठक होते हैं। साधारण हल्की श्वास लेने पर उनमें लगभग 2,00,00,000 छिद्रों में ही प्राणवायु का संचार होता है। शेष 5,30,00,000 छिद्रों में प्राणवायु न पहुँचने से ये निष्क्रिय पड़े रहते हैं। फलस्वरूप इसमें विजातीय द्रव्य जमने लगते हैं। जिससे क्षयरोग खांसी आदि हो जाते हैं। हमारे मस्तिष्क के 5000 सेल, प्रतिदिन नष्ट हो जाते हैं, 14 दिन के पश्चात् हमारी ऊपर की त्वचा बदल जाती है और 4 महीने के बाद हमारे शरीर का सारा रक्त बदल जाता है। यह तो एक छोटी सी झलक है जो आप को मोटी-मोटी जानकारी प्रदान करने के लिये प्रस्तुत की गई है। यदि विस्तार से चर्चा की जाए तो सोच लीजिए कि विवरण कितना विस्तृत हो जाएगा और हम हैं कि हमें कुछ खबर ही नहीं है। दुनियाँ के प्रपंच में हम इस कद्र उलझे हुए रहते हैं कि बकौल ग़ालिब हम वहाँ है जहाँ से हम को कुछ भी हमारी खबर नहीं आती। इसके विषय में एक हिन्दी कवि ने लिखा है–

है द्रव्य कारीगर नहीं पर कोठरी आली बनी।
दो बूंद गंदे नीर से सब ठौर है लाली बनी।।
मलमूत्र मज्जा रुधिर तान समान सब अपवित्र है।
तापर रुचिर पर्दा लगा, वह खेल परम विचित्र है।।

मानव शरीर संसार का सर्वोत्तम आश्चर्य और प्रकृति की अद्भुत कारीगरी है। इसमें सर्वश्रेष्ठ, स्वयंचालित कोमल एवं सूक्ष्म, परन्तु शक्तिशाली यंत्र है। जैसे– आँखें–अद्भुत कैमरा, कान–अद्वितीय श्रवण यंत्र, हृदय और फेफड़े–निरंतर चलने वाले अनुपम पंपिंग यत्र, पेट–आश्चर्यजनक रासायनिक प्रयोगशाला, नाड़ी–मीलों लम्बी संचार व्यवस्था। मन मस्तिष्क–अनन्त क्षमतायुक्त अद्भुत कम्प्यूटर। इसके अतिरिक्त इसमें हृदय एक दिन में 103689 बार धड़कता हैं रक्त एक दिन में 16,88,000 मील यात्रा करता हैं एक स्वस्थ पुरुष 2 पल में जब बैठा होता है तो 12, जब चलता है 18, जब सोता है 30 और जब वह भोग विलास करता है तो 64 श्वास लेता है। अतः जो व्यक्ति अधिक कामी होगा वह अधिक श्वास लेगा। एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

बैठत बारह, चलत अठारह, सोवत जावे तीस ।

मैथुन करते चौंसठ जावें क्यूँ न भजो जगदीश ।।

इस प्रकार एक स्वस्थ व्यक्ति एक दिन में 21600 श्वास लेता है । एक उर्दू शायर ने लिखा है–

सांस आये ज़िन्दगी न आये तो मौत ।

ज़िन्दगी और मौत में इतना ही तो फासला है ।।

सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन सभी यंत्रों के मध्य का पारस्परिक मेल जिससे यह मानव शरीर रूपी यंत्र 100 वर्षों से भी अधिक समय तक काम कर सकता है । जैसे महात्मा पीपा ने लिखा है–

जो ब्रह्मांडे सोई पिंडे, जो खोजे सो पावे ।।

–श्री गुरु ग्रंथसाहिब, पृष्ठ 695

संत महात्मा इस शरीर को नर नारायणी देह कह कर पुकारते हैं । गुरु अमरदास जी ने इस को 'हरि मंदिर इहु सरीरा' और ईसा ने इसे जिन्दा-ख़ुदा का घर कहकर पुकारा है । इस घर के भीतरी ढांचे को देखने से मालूम होता है कि इसकी 12 मंजिले हैं जिन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है ।

1. पिण्ड – आँखों से नीचे भाग को पिण्ड कहा जाता है । जिसमें 8 चक्र हैं–(1) मूलाधार चक्र, (2) स्वाधिष्ठान चक्र, (3) मणिपूरक चक्र, (4) अनाहत चक्र, (5) विशुद्ध चक्र, (6) जीवन चक्र, (7) आज्ञा चक्र, (8) ब्रह्म चक्र ।

2. ब्रह्माण्ड–आँखों के ऊपर के भाग को ब्रह्माण्ड कहा जाता है । इसके नौ दरवाजे हैं । जैसे गुरु रामदास लिखते हैं–

नउ दरवाजे नवे दर फीके रसु अंम्रित दसवें चुईजै ।

–गुरुग्रंथसाहिब महला-4 पृ. 1323

अर्थात् मानव शरीर में 9 दरवाजे हैं । इन सब में गंदगी भरी पड़ी है । परन्तु दसवें दरवाजे से अमृत टपक रहा है ।

हमारा शरीर चंदन के उस वन की भाँति है जिसमें हमें अनमोल आध्यात्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु अज्ञानता वश हम इस वन की लकड़ी को 5 विकारों की अग्नि द्वारा जलाकर कोयला बनाते जा रहे हैं ।

स्वास्थ्य शब्द की व्युत्पत्ति 'स्व+स्थ' शब्दों से हुई है। स्व का अर्थ है आत्मा और स्थ का अर्थ स्थिति अर्थात् शरीर की आत्मा में सुन्दर, सुष्ठु, स्वस्थ स्थिति का नाम स्वास्थ्य है। अतः स्वस्थ व्यक्ति वह है जो मन, वचन एवं कर्म से शुद्ध है, जो प्रत्येक अवस्था में प्रसन्न है, जो काम को कर्त्तव्य समझकर करता है, जिसकी पाचन शक्ति ठीक है, भूख प्राकृतिक है, नींद पूरी आती है, चेहरे एवं आँखों में चमक है एवं जिसका जीवन नियमबद्ध है।

शरीर में तीनों दोष वात, पित्त और कफ समान अवस्था में हो, अग्नि समान हो, सब धातुएं समान हों। मलमूत्र विसर्जन की क्रिया स्वाभाविक रूप से होती हो, आत्मा, मन और सभी इन्द्रियां प्रसन्न हों। इस शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक स्थिति का नाम स्वास्थ्य है। प्रस्तुत परिप्रेक्ष्य में विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) द्वारा स्वास्थ्य की अधोलिखित परिभाषा सत्य है–

Health is not mere absence of diseases. It is the state of being physically, mentally and socially well-being.

स्वास्थ्य का भाव केवल रोगों से मुक्ति ही नहीं है, अपितु इसका अर्थ हे कि मानव शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से भी ठीक हो।

चाहे कुछ भी हो संसार का सर्वोत्तम सुख अच्छा स्वास्थ्य है। तभी तो कहते हैं, पहला सुख निरोगी काया। इसके बिना न तो मानव कोई भौतिक सुख पा सकता है न आध्यात्मिक। अतः महर्षि चरक ने आयुर्वेद में सत्य ही लिखा है–

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीर मनुपालयेत।

तद्भावेहि भावनां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।

–चरकसंहिता निदान 617

संसार के सारे कामों को छोड़कर सर्वप्रथम शरीर रक्षा के उपाय करने चाहिये क्योंकि शरीर स्वस्थ न होने पर सब कुछ होता हुआ भी सर्वथा बेकार हो जाता है। अतः महात्मा गाँधी अपनी पुस्तक Key to Health में लिखते हैं–

A Healthy pauper is better than ailing king.

एक बीमार राजा से एक स्वस्थ निर्धन व्यक्ति अच्छा है।

संसार के प्रत्येक मानव को स्वस्थ रहने के लिए अधोलिखित पाँच बातें

अपने जीवन में अवश्य अपनानी चाहिए –

1. प्रातः जागना – प्रातः काल ब्रह्म मुहुर्त में 4 बजे उठो। इसके उपरांत दांत, मुँह साफ करके रात्रि को तांबे के बर्तन में रखा हुआ पानी पीओ। यदि कब्ज़ की शिकायत हो तो इसमें त्रिफला डाल लो। इस प्रकार आप कब्ज़ के कभी भी रोगी नहीं बनेंगे। कब्ज़ से 36 प्रकार के रोग होते हैं। इसी कारण आयुर्वेद में लिखा है–

सर्वेषामेष रोगाणां निदानं कुपिता मलाः

कब्ज रोगों की जननी है।

यह एक निश्चित् बात है कि आवश्यकता से अधिक खाने वाले कब्ज का शिकार हो जाते हैं। बिना भूख के खाने से छोटी और बड़ी दोनों आंतड़ियों को हानि होती है। प्रातः जागरण स्वास्थ्य के लिये अत्यंत लाभदायक है। यजुर्वेद में लिखा है कि इससे 14 प्रकार के रत्नों की उपलब्धि होती है जो व्यक्ति प्रातः उठता है वह अपना सारा कार्य सुचारू रूप से करता है, क्योंकि उसके पास काफी समय होता है। इसी कारण फ्रैंकलिंग ने सत्य ही लिखा है–

Early to bed, Early to rise, makes a man healthy, wealthy and wise.

जो व्यक्ति रात्रि को जल्दी सो जाता है और प्रातः काल जल्दी उठ जाता है, वह व्यक्ति स्वस्थ, धनी एवं बुद्धिमान बन जाता है।

2. व्यायाम और प्राणायाम – तैरना संसार का श्रेष्ठ व्यायाम माना जाता है, परन्तु इसको प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर सकता। तैरने से, नृत्य करने से, खुलकर गाने से और दिल खोलकर हँसने से नस-नस का व्यायाम हो जाता है। परन्तु प्रातः भ्रमण ही सब आयु के व्यक्तियों के लिये सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है, क्योंकि इसको प्रत्येक व्यक्ति आसानी से कर सकता है। व्यायाम शारीरिक शक्ति, प्रकृति एवं आयु के अनुसार ही करना चाहिये। शारीरिक विकास के लिये सप्ताह में एक बार मालिश अवश्य करनी चाहिये। स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये व्यक्ति को अपने शरीर की प्रकृति के अनुकूल आसन एवं प्राणायाम भी करने चाहिये क्योंकि ऐसा करने से शरीर के सभी अंगों का बड़े व्यवस्थित ढंग से व्यायाम हो जाता है। व्यायाम से शरीर से रक्त का प्रवाह

बढ़ता है । शरीर के लचीलेपन में वृद्धि होती है । इस से मन में स्फूर्ति एवं उत्साह बना रहता है । आजकल अधिकतर परिवार नौकरों पर निर्भर रहते हैं और स्वयं काम नहीं करते । अतः अपने अंगों को हिलाते रहिये ताकि इनको जंग न लग जाये ।

3. सात्विक भोजन – जैसा भी भोजन मिले इसको प्रेमपूर्वक प्रभुप्रसाद समझ कर स्वीकार करें । वस्तुतः भोजन, निन्द्रा, सांस और ध्यान – ये चार स्वास्थ्य के आधार हैं । भारतीय संस्कृति में भोजन करना मात्र पेट भरने का कार्य नहीं । जब भी भूख लगे जैसा भी भोजन मिले बिना नियम के खा लेना पशुओं का कार्य है । हमारे यहाँ भोजन करना प्रभुपूजन के तुल्य पवित्र कार्य है । भोजन क्या हमारे यहाँ अन्न व जल की उपयोगिता भी परखी जाती है । किसी कवि ने कहा है–

जैसा संग वैसा रंग, जैसा पानी वैसी वाणी ।
जैसा अन्न वैसा मन, जैसा ख़्याल वैसा व्यवहार ।।
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, जैसी करनी वैसी भरनी ।।

मुनि श्री तरुण सागर जी लिखते हैं–

भूख लगे तो खाना प्रकृति है । भूख न लगे तब खाना विकृति है और स्वयं भूखे रह कर किसी भूखे को खिला देना संस्कृति है । भोजन यह सोचकर मत करो कि मैं खा रहा हूँ बल्कि यह सोचकर करो कि मेरे भीतर जो मेरा प्रभु विराजमान है, उसे मैं अर्घ्य चढ़ा रहा हूँ । तुम जब यह सोचकर भोजन करोगे तो फिर कभी मांस, मदिरा और जर्दा आदि नहीं खा सकोगे । क्या तुम कभी परमात्मा को इनका भोग लगाते हो? नहीं ना! तो फिर इन्हें अपने पेट में डालकर अपने भीतर बैठे प्रभु को अपमानित क्यों करते हो?

–कड़वे प्रवचन (भाग 1, पृ. 122)

यदि भोजन शुद्ध नहीं है तो भजन भी नहीं हो सकता । यदि खानपान शुद्ध नहीं है तो खानदान भी शुद्ध नहीं रह सकता । अतः हमें दोनों समय सात्विक, शुद्ध शाकाहारी भोजन करना चाहिये । दरअसल भोजन करने के नियम बहुत कम व्यक्तियों को मालूम है । वे हैं–

1. क्या खाये?, 2. कब खायें? 3. कैसे खायें? 4. कितना खायें?

कौन सा भोजन सबसे उत्तम होता है? इसका क्रमशः उल्लेख इस प्रकार है ।

1. फल व दूध, 2. उबली हुई सब्जियां, 3. अंकुरित अनाज, 4. दलिया, 5. चोकरदार आटा।

लाल मिर्च एवं अत्यधिक मसालों से बचें। चाय, काफी, सिग्रेट, तम्बाकू, मांस व शराब से सदा दूर रहें। बग़ैर भूख कभी न खायें, खाना खूब चबा कर खायें, खाने के साथ पानी न पिए। भोजन से एक घंटा पूर्व या पश्चात् ही पानी पियें। रात का भोजन हल्का होना चाहिए और सोने से तीन घंटे पूर्व करना चाहिये। बरगर, पीजा, कोल्ड ड्रिंक कभी न लें। रायता और खीर कभी साथ साथ नहीं खाने चाहिये। दूध के साथ नमक, खरबूजा, तरबूज, पपीता कभी नहीं खाने चाहियें। क्योंकि ये सब स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। मुख्यतः व्यक्ति गलत खानपान व गलत रहन सहन से बीमार होता है। डॉक्टरों का अनुमान है कि 80 प्रतिशत से अधिक लोग गलत खान पान और अधिक खाने के कारण बीमार होते हैं, क्योंकि साधारण व्यक्ति अपनी आवश्यकता से दुगुना खाता है। कम खाने से आयु कम नहीं होती अपितु अधिक खाने से आयु कम होती है, कम खाने से लोग इतने नहीं मरते जितने अधिक खाने से मरते हैं। अतः आहार ही औषधि है। इसलिये अमेरीकी डॉक्टर केनेथवार ने ठीक ही लिखा है—

यदि मानव जाति अपना भोजन एक तिहाई घटाकार खाये तो डॉक्टर लोग भूखे रहेंगे, क्योंकि लोग ज्यादा खाकर बीमार होते हैं और इससे डॉक्टरों की रोटी-रोजी चलती है।

वस्तुतः हमारे जीवन की सब क्रियाओं का आधार भोजन है, क्योंकि जैसा हम भोजन करेंगे, वैसा ही हमारा मन होगा। परन्तु दुर्भाग्यवश आज कल हमारे घरों में भोजन स्वास्थ्य की दृष्टि से नहीं अपितु स्वाद की दृष्टि से बनाया जाता है। जिह्वा के स्वाद के लिये भाँति-भाँति के मसाले डालकर भोजन तैयार किया जाता है। ध्यान रहे हमें कच्ची सब्जियाँ खानी चाहियें क्योंकि ये स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक लाभदायक होती हैं। यदि कच्ची सब्जियों का सेवन करना हो तो उन्हें मत छीलिये, मत निचोड़िये और अधिक देर पानी से मत धोइए। धीमी आंच में ढककर पकाइये ताकि इनके पौष्टिक तत्त्व नष्ट न हो जायें। व्यक्ति को केवल जीने के लिए ही आहार लेना चाहिए न कि स्वाद के लिये।

रोगोत्पत्ति या रोगों के उतार चढ़ाव में जितना गहरा संबंध शारीरिक कारणों अथवा परिस्थितियों को माना जाता है, उससे कहीं अधिक गहरा प्रभाव मनोदशा का पड़ता है, यदि व्यक्ति मानसिक दृष्टि से सुदृढ़ हो, तो फिर रोगों की संभावना बहुत ही कम रह जाती है । आक्रमण करने पर भी रोग बहुत समय तक ठहर नहीं सकेंगे । इसलिए चिकित्सकीय औषधि उपचार पर जितना ध्यान दिया जाता है, उससे कहीं अधिक यदि मनःस्थिति को सही बनाने मानसिक परिष्कार करने, चिंतन चरित्र व्यवहार को उच्च स्तरीय बनाने का प्रयत्न किया जा सके तो निरोगी काया के साथ ही व्यक्तित्व परिष्कार का दुहरा लाभ उठाया जा सकता है । मन ही प्रगति या अवनति का, रुग्णता या निरोगता का मूल है । इस तथ्य को जितना शीघ्र समझा जा सके उतना ही अच्छा है । डॉक्टरी इलाज के प्रवर्त्तक श्री हेपोक्रेटस के शब्दों में–

पैर गरम, पेट नरम, सिर ठंडा ।
घर में आये रोग तो मारो डंडा ।।

हमारे शरीर के लिए कैसा भोजन उपयोगी है? इसके विषय में श्री बाणभट्ट ने अत्यंत संतोषजनक अधोलिखित उत्तर दिया है–

हितभुक, मितभुक, ऋतुभुक कदापि न रोगी स्यात्

अपने शरीर की प्रकृति के अनुसार जो हितकर एवं सीमित मात्रा में ऋतु के अनुसार अपने परिश्रम की सच्ची कमाई का भोजन करता है वह कभी भी रोगी नहीं होता ।

ठाकुर बनवीर सिंह चातक 'नसीहत-ए-सेहत' नामक कविता में लिखते हैं–

मुश्किल बहुत है सेहत का बनाना ।
बिगड़ जाए यह तो फिर क्या ठिकाना ।।
सेहत के इन उसूलों पर चलोगे ।
तो ए दोस्त, हमेशा फूलोगे फलोगे ।।
कई रोगों की जड़ होती है कब्ज़ ज़ालिम,
नहीं रखना इससे जरा भी मरासिम ।।

अगर चाहो जो इससे पीछा छुड़ाना ।
तो रोज़ाना किशमिश और गुलकंद खाना ।।
बहुत मीठे हैं फल जो रब ने बनाए ।
इन्हें खाओ तो नूर चेहरे पर आए ।।
जो खाए घी, दूध, दही और मट्ठा ।
तो बुढ़ापे तलक भी बना रहे पट्ठा ।।
गर पपीता बड़े जौक़ (शौक़) से रोज खाए ।
यकीनन कब्ज़ को चुटकियों में भगाए ।।
जितने भी शाक, दाल, फल, फूल हैं,
वो प्रोटीन विटामिन से भरपूर हैं ।।
बदतर बहुत है अण्डा, गोश्त खाना ।
मछली और मुर्गे-ए-मुसल्लम उड़ाना ।।
शराब या कि सिगरेट बीड़ी का पीना ।
करना है गर्क मंझदार में सफ़ीना ।।
जो चाय दिन भर पिया करते हैं ।
वो जहर इसमें टेनिन लिया करते हैं ।।
बराबर का शहद घी हरगिज़ न खाना ।
जहर के मानिंद (समान) है इनको मिलाना ।।
दूध के संग मूली या बैंगन न लेना ।
न लेना नींबू और न मद्य लेना ।।
हर दिन समोसे और चाट खाना ।
यानि पैसे देकर खुद बीमारी बुलाना ।।
गर खाओ रोज़ सुबह पके टमाटर ।
तो हो जाए गाल लाल जैसे टमाटर ।।
पालक और गाजर गर रोज खाते रहो ।
सुबह सैर करने को जाते रहो ।।
लौटकर दण्ड बैठक लगाते रहो ।
तो घोड़े की तरह दनदनाते रहो ।।

सुबह उठकर 'बेड टी' हरगिज न पीना ।
बढ़ाती है एसिड जलाती है सीना ।।
ये चंद बातें बड़ी कीमती हैं ।
भले ही हमें ये कठिन दीखती हैं ।।
बुजुर्गों की 'चातक' यही है नसीहत (शिक्षा) ।
तजर्बा करके देखो यही है हक़ीक़त (सच्चाई) ।।

4. संयमित जीवन : मन को संयम में रखते हुए इस का प्रयोग करने से ही मानव संतुलित, मानसिक स्थिति एवं संयमित जीवन व्यतीत कर सकता है। ऐसा करने से उसके मानसिक रोग, चिन्ता, शोक, दुःख आदि मनो विकारों से मुक्ति मिल जाती है। अतः मन सदा प्रसन्न एवं निश्चित् रहने लगता है।

हँसना एवं मुस्कराना स्वास्थ्य के लिये परमावश्यक है। अतः महर्षि व्यास लिखते हैं–**''प्रसन्न एकाग्रं स्थिति पद लाभ्यते''** जो व्यक्ति प्रसन्न है, उस का मन एकाग्र होता है। जिसका मन एकाग्र होता है, वह समाधि की अवस्था को प्राप्त होता है। जो व्यक्ति प्रसन्न नहीं है जिसके मन में दुःख, द्वेष, ईर्ष्या, चिन्ता के बवण्डर उठ रहे हैं वह प्रभु का ध्यान कैसे करेगा? यदि ध्यान नहीं करेगा तो उस आनन्द को कैसे पायेगा। महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं–**सर्वचिन्ता परित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते** अर्थात्–जो हर समय प्रसन्न रहता है जिसने सब चिन्ताओं का त्याग कर दिया है, चिन्ताओं से ऊपर उठा हुआ वही मनुष्य योगी है। उसको योग की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

अतः मानव को अपनी इच्छाओं को नियमित व्यवस्थित एवं मर्यादित करके अपनी दिनचर्या एवं जीवनचर्या को व्यवस्थित करना चाहिये। संयमित जीवन व्यतीत करके ही मानव सुखी एवं शांत रह सकता है। इसके लिये प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक रूप से स्वस्थ, मानसिक रूप से संतुष्ट एवं शांत, बौद्धिक रूप से जागरुक और आत्मिक रूप से पवित्र एवं पावन होना चाहिये। इसके विषय में योगिराज कृष्ण ने कहा है–

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमाँश्चरति निःस्पृह ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।। –गीता 2.71

जो इन्साँ करे ख़्वाइशें दिल से दूर,
हवस का न हो जिसके दिल में फ़तूर ।
न उसमें ख़ुदी (अहंकार) हो न हो मेर-तेर (ममता) ।
सकूँ (शांति) उसको हासिल है दिल उसका सेर (तृप्त) । ।

भावार्थ – जो व्यक्ति सारी इच्छाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित, इच्छारहित रहता है वही शांति को प्राप्त होता है ।

अधिक आयु जीने की कला को जीवन में अपनाएं–

1. खाने को आधा करें ।

2. पानी को दो गुणा करें ।

3. व्यायाम को तीन गुणा करें

4. हँसने को चार गुणा करें ।

5. उषा जलपान –

एक सर्वेक्षण के अनुसार हमारी आँखों में 98.7%, फेफड़ों में 79%, हृदय में 79.5%, मस्तिष्क में 90% गुर्दे में 75.3%, प्लीहा (पेट की तिल्ली) में 77% और हड्डियों में 25% पानी होता है । इस प्रकार एक अनुमान के अनुसार हमारे शरीर में 70% से अधिक पानी होता है । इसलिये स्वस्थ रहने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि रात को सोने से पूर्व कांसे के लोटे में तीन गिलास पानी भरकर लकड़ी के मेज पर रख लें । सुबह उठते ही प्रत्येक व्यक्ति को उस पानी में एक नींबू और एक चम्मच शहद डाल कर पीना चाहिये । इसे ही उषापान के नाम से पुकारा गया है । इससे शरीर के जहरीले पदार्थ निकल जाएंगें जोकि आपकी शुगर, उच्च रक्तचाप, हाजमा, गुर्दे के रोग आदि बीमारियां ठीक हो जाएंगी । अतः प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिये प्रतिदिन 3 लिटर पानी का सेवन करना चाहिये । आपके शरीर का भार भी संतुलित हो जाएगा । अतः एक अनुभवी डॉक्टर के शब्दों में–

Water is medicine and is enemy of disease. It can destroy all the diseases, therefore, it will cure you from all the diseases.

जल एक औषधि है और यह रोगों का शत्रु है । यह सभी रोगों का नाश कर सकता है और आपको पूर्ण स्वस्थ रख सकता है । अतः सत्य ही कहा है कि जल ही जीवन है ।

6. प्रभुसमर्पण –

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे हैं मेरा । । –कबीर

जब मानव में ऐसी भावना हो तभी इसको प्रभु समर्पण की भावना कहना चाहिये । प्रभो ! मैं मेरे लिए ही खाता, पीता, कमाता, सोता एवं जीता हूँ । जब ऐसी मानसिक अवस्था उत्पन्न हो जाती है तब मानव वासना से उपासना की ओर, आसक्ति से भक्ति की ओर अग्रसर हो जाता है । तब वह कर्म करता हुआ भी उसमें नहीं फंसता । इसके विषय में तुलसीदास ने कितना सुन्दर लिखा है–

तुलसी जग में यूँ रहो, ज्यूं रसना मुख मांहि ।
खाती घी औ तेल नित, फिर भी चिकनी नांहि । ।

जब भक्त के हृदय में प्रभु समर्पण की भावना का प्रादुर्भाव हो जाता है तो उसमें प्रभु में पूर्ण आस्था हो जाती है वह समझने लगता है कि प्रभु जो भी करते हैं उसके भले के लिये ही करते हैं । ऐसी आस्था एवं श्रद्धा जिसके मन के अंदर है तो वह कभी भी डांवाडोल नहीं होता । चाहे कुछ भी हो । ऐसा व्यक्ति परमेश्वर एवं मृत्यु से भयभीत रहता है और कभी भी कुकर्म नहीं करता । नारायण स्वामी ने सत्य ही कहा है–

दो बातन को भूलमत, जो चाहे कल्याण ।
नारायण इक मौत को, दूजे श्री भगवान् । ।

चार बातों को सदा याद रखें और उसे अपने जीवन में अपनाइए–

1. दूसरों के द्वारा अपने ऊपर किये गये उपकार ।
2. अपने द्वारा दूसरों पर किये गये उपकारों की अपेक्षा ।
3. परमात्मा ।
4. मृत्यु ।

स्वास्थ्य एवं सौदर्य के लिये प्रभुसमर्पण होना परमावश्यक है । ऐसा

करने से उस के सारे दुःख दूर हो जाते हैं और वह सुखमय, शांतमय एवं आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है ।

उपरलिखित विवेचन से इतना ही कहना काफी होगा कि मानव जीवन में अच्छा स्वास्थ्य ही संसार का सर्वोत्तम सुख है । इसके बिना न तो मानव कोई भौतिक सुख पा सकता है न आध्यात्मिक । जैसे एक उर्दू शासन के शब्दों में–

आरज़मन्दाने सेहत याद रखे यह उसूल,
दस मिनट हर रोज़ टहले, शाम को खाने के बाद ।
पेट की मोटर में मसाले जो उड़ाते हैं, बहुत ।
उनकी आंतें ठीक होती हैं, दहीं खाने के बाद ।
ज़ायके और लज़्ज़तें, सब मुँह तलक महदूद हैं ।
हो जाता है सब बराबर, पेट में जाने के बाद ।
आंतों से लेना नहीं हरगिज़ कभी दांतों का काम ।
होता है खाना खराब, यूं ही निगल जाने के बाद ।
जो पकड़ सकते नहीं कसकर, जवानी की लगाम,
बहुत पछतायेंगे दौरे जवानी के गुज़र जाने के बाद ।
तन्दरुस्ती और खुशियाँ चाहने वालो सुनो
सोना गलत है आप का सूरज निकल आने के बाद ।
जल्दी सोना, जल्दी उठना, घूमने जाना सुबह,
राज़-ए-सेहत है यही तर्जे अमल आने के बाद ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेंर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)